अनुभवप्रकाश.

श्री

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

अनुभवप्रकाश.

दोहा—गुण अनन्तमय परमपद । श्रीजिनवर भगवान् ॥
ज्ञेय लक्ष्य है ज्ञानमें । अचल सदा निजस्थान ॥ १ ॥

परमदेवाधिदेव परमात्मा परमेश्वर परमपूज्य अमल अनुपम आनन्दमय अखण्डित भगवान् निर्वाणनाथकों नमस्कार करि अनुभवप्रकाश ग्रन्थ करौं हौं, जिनके प्रसादतैं पदार्थका स्वरूप जानि निज आनन्द उपजै ॥ प्रथम यह लोक षड्द्रव्यका बन्या है। तामैं पञ्चद्रव्यसौं भिन्न सहजस्वभाव सच्चिदानन्दाद्यनन्तगुणमय चिदानन्द है। अनादिकर्मसँयोगतैं अनाद्यशुद्ध होय रह्या है। तातैं परपदमैं आपा मानि परभाव कीये। तातैं जन्मादि दुःख सहे है। ऐसी दुःखपरिपाटी अपनी अशुद्धचिन्तवनतैं पाई है। जो अपने स्वरूपकी संभार करै तो एकछिनमें सब दुःख विलय जाय। जैसा कछु

सासंता आनन्दमय परमपद है, ताकौ पावै, ताकी संभारके करतही स्वरूपप्राप्ति होय है, यह उपाय दिखाइये है। येही परिणाम उलटि परमैं आपा मानि स्वरूपका विस्मरण करि रह्या है। येही परिणाम सुलटि स्वरूपकौं आपा मांनि परविस्मरण करै, तौ मुक्तिकामिनीका कन्थ होवे ॥

ऐसे परिणाममें कबु कलेश तौ नहीं। ये परिणाम कौन करै? ताका समाधान, अनादि अविद्यामैं पडा है। मोहकी गांठि निबड पडी है। आतमा परका एकत्वसन्धाने होय रह्या है। जैसैं कोई पुरुष अफीमके अमलकौ चढ्या है, वह दुःख पावै है, परि छूटि न सकै, काहेतैं बहुत चढ्या? छूटे सुख है, कलेश नाही, परि वाइडि आवै सो लेही ले। तैसैं पर मो वध्या है, छूटे सुख है, परि न छूटे है, अनादिसँयोग छूटतैं सुख है, परि झूठेंही दुःख माने है। याके मेटवेको प्रज्ञाछैनी आतमपरके एकत्वसन्धानमें डारै, चेतना अंश अपना जानै, जामैं जडप्रवेश नांही। कैसैं जानै? सो कहिये है ॥

यह परमैं आपा जानै है, सो यह ज्ञानी निज बानिगी है। इस निजज्ञानबानिगीकौ बहुत संत पिछानि पिछानि अजर अमर भये, सो कहनेमात्रही न ल्यावै, चित्तकौं चेतनामैं लीन करै, स्वरूप अनुभवका विलास सुखनिवास है, ताकौं करै। सो कैसैं करै सो कहिये हैं॥

निरन्तर अपने स्वरूपकी भावनामैं मग्न रहै, दर्शनज्ञानचेतनाका प्रकाश उपयोगद्वारमैं दृढ भावै। चित्परिणतितैं स्वरूप रस होय है। द्रव्य गुण पर्यायका यथार्थ अनुभवना अनुभव है। अनुभवतैं पञ्च परमगुरु भये होहिंगे। सो प्रसाद अनुभवका है। अनुभव आचरणकौं अरिहंत सिद्ध सेवै हैं। अनुभवमैं अनन्तगुणके सकल रस आवै है सो कहिये हैं॥

ज्ञानका प्रकट प्रकाश अनन्तगुणकौं जानै। ज्ञान विशेषगुणकौं परिणति परणवै, वेदै, आस्वाद करै। तहां अनुपम आनन्द फल निपजै ऐसैंही दरसनकौं परिणति

परणवै, वेदै, आस्वाद करै सुखफल निपजै। याही रीति सब गुणकौं परणवै, वेदै, आस्वादै आनन्द अनन्त अखण्डित अनुपमरस लीये उपजै। तातैं सब गुणका रस परिणतिके द्वार अनुभव करवैमैं आया। ऐसैंही द्रव्यकौं परणवै, वेदै, आस्वादै, आनन्द पावै। तब परिणतिद्वारि द्रव्य अनुभव भया। अनुभवका रस गुणपरिणति एकरस भये होय है। वस्तुका स्वरूप है। सो गुण चेतनाका सङ्क्षेपमात्र वर्णन कीजिये है॥

सकलगुणमैं ज्ञान प्रधान है। काहेतैं? ज्ञान विशेष चेतना है। ज्ञान सबका ज्ञाता है। सूक्ष्म न होता तौ इन्द्रियग्राह्य होता। तातैं सूक्ष्मकरि ज्ञानकी सिद्धि सत्ता-गुणविना सूक्ष्म सासता न होता। वीर्यगुणविना सत्ताकी निष्पत्तिसामर्थ्य कहां पाईये?। अगुरुलघुविना वीर्य हलका भारी भये जडताकौं धरता। प्रमेयगुणविना अगुरुलघुका प्रमाण कहां पाईये? अप्रमाण भये कौन मानता? वस्तुत्वविना प्रमाण किसका कहिये?

अस्तित्वविना वस्तुत्व किसके आधार कहिये? प्रदेशत्वविना अस्तित्व किसका निरूपिये? प्रभुत्वविना प्रदेशप्रभुता कहांतैं रहती? विभुत्वविना प्रभुत्व सबमैं कैसै व्यापता? जीवत्वविना विभुत्व अजीव होता, चेतनाविना जीवत्व कहां वर्तता? ज्ञानविना चेतनका विशेष जान्या न परता, दर्शनविना सामान्यविशेषज्ञान न रहता, सर्वज्ञताविना दर्शन कौन जानता? सर्वदर्शित्वविना ज्ञान कौन देखता? चारित्रचेतनाविना दर्शनज्ञानकी थिरता कहां रहती? परिणामात्मकत्वविना चिदचिद्विलास कहांतै करता? अकारणकार्यत्वविना परकार्य भये, निजकार्यको अभाव होता। असंकुचितत्वविना अविनाशी चेतनाविलास संकोच न आवता। त्यागोपादानशून्यत्वविना ग्रहणत्याग लग्या रहता। अकर्तृत्वविना कर्मका कर्त्ता होता। अभोक्तृत्वविना परभाव भोगवता। असाधारणविना चेतनाचेतनका भेद न परता। साधारणविना कोई पदारथ सत् होता, कोई असत् होता। तत्त्वविना वस्तु स्वरूप न धरता। अतत्त्वविना परका तत्व

आवता। भावविना स्वभावका अभाव होता। भाव भावविना अतीतका भाव अनागतमैं न रहता। भावाभावविना परिणमन समयमात्र न संभवता। अभावभावविना अनागत परिणमन न आवता। अभावविना कर्मका सद्भाव जान्या परता। सर्वथा अभाव अभावविना अतीतमैं कर्म अभाव था, सो अनागत अभावमैं ऐसा न होता। कर्ताविना निजकर्मका कर्ता न होता। कर्मविना स्वभावकर्मका अभाव होता। करणविना परिणमनकरि स्वरूपका साधन था सो न होता। सम्प्रदानविना परिणतिस्वरूपमैं आप समर्पण न करता। अपादानविना आपतैं आपकरि आप न होता। अधिकरणविना सबका आधार न होता। स्वयंसिद्धविना पराधीनता आवती। अजविना उपजता। अखण्डविना खण्डितता पावता। विमलविना मल होता। एकविना अनेक होता। अनेकविना गुण अनेकका अभाव होता। नित्यविना अनित्य होता। अनित्यविना षट्गुणी वृद्धिहानि न होय। जब अर्थक्रियाकारकस्वभावकी सिद्धि न

होय। भेदविना अभेद द्रव्य गुण होय। अभेदविना एक वस्तु न होय। अस्तिविना नास्ति होय। नास्तिविना परकी अस्तिता होय। साकारविना निजाकृति न होय। निराकारविना पराकार धरि विनाश पावै। अचलस्वभावविना चल होय। ऊर्ध्वगमन-स्वभावविना उच्चपद न जान्यौ परै। इत्यादि अनंत विशेषण ज्ञानी अनुभव करै। सो निजजानि कैसैं होय? सो कहिये हैं॥

प्रथम अनादि परमैं अहं ममरूप मिथ्याका नाश करै। पीछै पररागरूप भाव विध्वंस करै। जब परराग मिटै तब वीतराग होय। परप्रवेशका अभावभाव भया, तब स्वसंवेदरूप निजजानि होय। अथवा अपने द्रव्य गुण पर्यायका विचार करि निजपद जानै। अथवा उपयोगमैं जानरूप वस्तुकौं जानै। अनन्तमहिमाभण्डार सार अवि-कार अपारशक्तिमण्डित मेरा स्वरूप ऐसा भाव प्रतीतिकरि करै। ध्यान धरै निश्चल होय यह जांनि जानै। निजरूपजानहीकौं अनुपपदका सर्वस्व जानै। इस स्वरूपकी

जानिविना परकी मानिकरि संसारी दुःखी भये। सो परकी मानि कैसैं मिटै? सो कहिये हैं ॥

भेदज्ञानतैं परनिजका अंश अंश न्यारा न्यारा जानै। मैं उपयोगी, मेरा उपयोगत्व ग्रन्थ गावै हैं। मै देखौं जानौं हौं। यह निश्चय ठीक कीये आनन्द बढै। परपरिणति मेरी करी है। न करौं तौ न होय मानि, मेरी परमैं मै करी मानि, अब मै निजमैं मानौं, तौ मानतप्रमाणही मुक्तितैं याही सगाई अवश्य वर होंगा। करमके भरमका विनाश निजसरम पाये होय है। सो निजसरम कैसैं पाईये? सो कहिये हैं॥

मेरा अनन्तसुख मेरे उपयोगमैं है। सो मेरा उपयोग तौ सदा मैं धरौं हौं। मै उपयोगकौं भूलि अनुपयोगीमैं अनादि रत भया सुखस्थानक चेतना उपयोग भूल्या सुख कहांतैं होय? अब मै साक्षात् उपयोगप्रकाश ठावा (योग्यस्थान) कीया। काहेतैं? अहं नर ऐसी मानि, नरशरीर जड मैं तौ न होय, मेरे उपयोगतैं भई है।

सो ऐसा मानिका करणहार मेरा उपयोग अशुद्धस्वांगही धरि बैठा है। जैसैं कोई एक नटवा वरदका स्वांग ल्याया है, पूछै है, आपा भूल्या है, मैं नरकी पर्याय कब पावौंगा? झूंठेही पूछै है, नर ही है। भूलतैं यह रीति भई है। तैसैं चिदानन्द आपा भूल्या है, परमैं आपा जान्या है, अपनी आप भूलि मेटै, सदा उपयोग धारि आनन्दरूप आप स्वयमेवही बन्या है। विनायत्नतैं निजनिहार नाहीं कार्य है। निजश्रद्धा आये निज अवलोकन होय है। यह श्रद्धा काहेतैं होय है सो कहिये हैं॥

प्रथम सकललौकिकरीतितैं पराङ्मुख होय, निजविचारसन्मुख होय, कर्मकन्दराविषैं छिप्या है चिदानन्द राजा। नोकर्म प्रथमगुफा, दूजी द्रव्यकर्मगुफा, तीजी भावकर्मगुफा प्रथम नोकर्मगुफामैं परिणति पैठि कि, हमारा राजा देखै, तहां उसकौं कछु न दीसै, चक्रति होय रही, तब फिरिनै लगी, तब श्रीगुरुनैं कह्या कि, तूं कहा ढूंढे है? तब वह कहने लगी, मेरे राजाकौं देखौं हौं सो न पाया। तब श्रीगुरुनें कह्या तेरा राजा यहांही है,

मति फिरै यहांतैं। तीसरी गुफा है, तहां वसे है। हाथकी डोरी इस गुफातक आई है। सो यह डोरी उसके हाथकी हलाई हाले है। जो वह न होय तौ डोरी आपसैं न हाले है। तातैं विचारि इस शक्ति या डोरीकी अनसूत चली जाना। कर्ममैं देखि इसकी क्रिया डोरीकौं कौन हलावै है? द्रव्यकर्मगुफा अंदरी प्रकृति प्रदेश स्थिति अनुभाग वाहीके निमित्ततैं नाव पऱ्या है। वाकी परिणति भई जैसी जैसी वर्गणा बंधी वहांभी उसकी वणाई सत्तासौं द्रव्यकर्म नाव उसके भावोंके निमित्ततैं नानाकर्मपुद्गलनैं नाव पाया। भावकर्मगुफामैं राग द्वेष मोहका प्रकाशमैं छिप्या स्वरूप रहे है। वह प्रकाश तेरे नाथका अशुद्ध स्वांग है। तामैं तू खोजि, भय मति करै। निःशंक जानि यह राग द्वेष मोहकी डोरीके साथि जाइ खोजि, जिस प्रदेशतैं उठी सोही तेरा नाथ है। डोरीकौं मति देखै। जिसके हाथमैं डोरी तिसकौं लागि तुराति मिलैगा। अपनी ज्ञानमहिमाको छिपाय बैठा है। तू पिछानि। यह गुप्तज्ञान भया तौऊ नाथ छिप्या नहीं। चेतना-

प्रकाशरूप चिदानन्द राजा पाय सुख पावैगी। निजशर्मका उपाय कह्या। यह निजसुख तौ निजउपयोगमैं कह्या। दुर्लभ क्यौं भया है? सो कहिये हैं॥

यह परिणामभूमिकामैं मोहमदिरा पीय अविवेक मल्ल उन्मत्त होय विवेकमल्लकौं जीति जयथंभ रोपि ठाढा (खडा) भया है जोरावर। तातैं आपकी सुखनिधिका विलास न करणै दे। विवेकमल्लका जोरा भये अविवेक हण्या जाय। तब निज निधि विलसिये। पररुचि खोटा आहार सेवतैं मिथ्याज्वर भई। तब विवेक निर्बल भया। तातैं स्वआचार पारा श्रद्धा बूटीके पुटसौं सुधार्‍या। ताका सेवन करै, तब विवेकमल्ल मिथ्याज्वर मेटि सबल होय अविवेककौं पछारै। तब आनन्द निधिका विलास होय। स्वआचार कहा॥ श्रद्धा कैसैं हो सो कहिये हैं॥

इस अनादिसंसारमैं परविचार अनादि कीया। मेरी ज्ञानचेतना अशुद्ध भई। अब स्वआचार पारा सेवन करिये तौ, अविनाशी पद भेटियै। मैं कौन हौं? मेरा

स्वरूप कहा? कैसैं पाइये? प्रथम पद अपनेका उपयोगका प्रकाश है। दर्शनज्ञान उपयोग चारित्र उपयोग। दर्शन देखता है, ज्ञान जानता है, चारित्र परिणामकरि आचरिता है। ऐसा ज्ञेयका देखना जानना आचरणा अनादि कीया अपने विशुद्ध-पदमैं उपयोग न दीया। अतींद्रियसुखके लाभविना रीता रह्या। अनन्ते तीर्थङ्कर भये तिनहूनैं स्वरूप शुद्ध किया, अनन्तसुखी भये। अब मोकौभी ऐसैं स्वरूप शुद्ध करना ॥

मुनिवर जन निरंतर स्वरूपसेवन करे हैं। तातैं अपना त्रैलोक्यपूज्य सबतैं उच्च-पद अवलोकि कार्य करना है। कर्मघटामैं मेरा स्वरूपसूर्य छिप्या है। कछु मेरा स्वरूपसूर्यका प्रकाश कर्मघटाकरि हण्या न जाय। आवऱ्या है। वारैही वारै घटाका जोर है। मेरे स्वरूपकूं हानि न सकै। चेतनातैं अचेतन न करि सकै। मेरीही भूलि भई। स्वपद भूल्या। भूलि मेटि जबही मेरा स्वपद ज्यौंका त्यौं बण्या है ॥

जैसैं कोई रत्नद्वीपका नर था। तहां रत्नके मंदिर थे। रत्नसमूहमैं रहै था। परख (कमरमें बांधनेका कटिसूत्र) न जानै था। और देशमैं आया, कणगतीमैं हरिन्मणि लगी थी। एकदिन सरोवर स्नानकौं गया। जौहरीनैं देख्या। हर्‍या पाणी इसकी मणिप्रभातैं सरोवरका भया। तब उसपासि एक नग ले राजासमीप उस नरकौं ले गया। कोडि मंदिर भरै एती दीनार दिवाई। तब ओ नर पिछताया। मेरा निधान मैं न पिछान्या। तैसैं अपना निधान आपसमीप है। पिछानतही सुखी होय है। मेरा आत्मा तातैं ज्ञानका धारी चिदानन्द है। मेरा स्वरूप अनन्तचैतन्यशक्तिमण्डित अनन्तगुणमय है। मेरे उपयोगके आधीन बण्या है। मैं मेरे परिणाम उपयोग मेरे स्वरूपमैं धर्‍यौंगा। अनादिदुःख मेटौंगा। सुगमराह स्वरूप पावनेका है। दृष्टिगोचर करनाही दुर्लभ है। सो संतोनैं सुगम कर दिया है। उनके प्रसादतैं हमोनैं पाया है॥

सो हमारा अखण्डविलास सुखनिवास इस अनुभवप्रकाशमैं है। बचनगोचर नाहीं,

भावनागम्य है। यह मेरा ज्योतिःस्वरूपका प्रकाश प्रगट इस घटमैं प्रकाशता है। छिप्या नहीं, गोप्य कैसा मानौं? छती वस्तुकौं अछती कैसैं करौ? छती अछती न होती है। पीछैं झूठैही छतीकौं अछती मानी थी। तिसका अनादि दुःख फल भया था। शरीरकौं आपा कैसैं मानिये? यह तो रक्तवीर्यतैं भया सात धात जड विजातीय विनश्वर पर, सो मेरी चेतना यह नाही। ज्ञान वर्ण वर्गणा विजातीय स्वरूपकौं वर्ण अचेत बंधक विनश्वर रसविपाकहीन है, सो मेरी नाही। विभाव स्वभाव मलिन करै कर्मउदयतैं भया, मेरा नाहीं। मेरा चेतनापद मैं पाया। ज्ञानलक्षणतैं लक्ष्य पिछानि, स्वरूपश्रद्धातैं आनन्दकन्दकी केलीकरि सुखी हौं। सो आनन्दकन्दकी केली स्वरूप-श्रद्धातैं कैसैं होय? सो कहिये है॥ अनन्तचैतन्यचिन्हकौं लिये अखण्डितगुणका पुञ्ज पर्यायका धारी द्रव्य ज्ञानादिगुणपरिणति पर्यायअवस्थारूप वस्तुका निश्चय भया॥

ज्ञान जाननमात्र, दर्शन देखवेमात्र, सत्ता अस्तिमात्र, सो वीर्य वस्तुनिष्पन्न

सामर्थ्यमात्र, केवल ऐसा प्रतीत्यभाव रुचिभावकी आस्तिक्यताश्रद्धान श्रद्धा कहिये। तिसतैं उपजी आनन्दकन्दमैं केलिकरि सुखी हौं। जान्या आनन्द ज्ञानानन्द, स्वरूप देखै आनन्द सो दर्शनानन्द, परिणया आनन्द चारित्रानन्द। ऐसैं सब गुणानन्द, तिसका मूल निजस्वरूप आनन्दकन्द। तिसकी केलि स्वरूपमैं परिणति रमावणी। तिसतैं सुखसमूह भया है। और इसतैं ऊंचा उपाय नांही। भव्यनकौं शिवराह सोहली (सहज) यह भगवंतनैं बताई है। भगवन्तकी भावनातैं सन्त महन्त भये। मैंभी याही भावनाका अवगाढ थंभ रोप्या है। सम्यग्दृष्टीकै ऐसा निरन्तर अभ्यास रहै॥ कर्मअभावतैं ज्ञान स्वरसमण्डित सुखका पुंज प्रगटै तब कृतकृत्य होय है। इस आतमका स्वरूप गोप्य हो रह्या है। साक्षात् कैसैं होय? भावना परोक्षज्ञानकरि बढाई है। सो कैसैं सिद्धि होय सो कहिये हैं॥

जैसैं दीपकके पांच पडदे हैं। एक पडदा दूरि भये, झीणा बारीक उद्योत

भया। दूजा पडदा दूरि भया, तब चढता प्रकाश भया। तीजा गये चढता भया। चउथा गये अधिक चढता भया। ऐसैं ज्ञानावरणके पांच पडदे हैं। मतिज्ञानावरण गये स्वरूपका मनन कीया॥ अनादि परमनन था, सो मिट्या। अनन्तर ऐसी प्रतीति आई, जैसैं कोई पुरुष दरिद्र है, करजको स्वौका है, उसकै चिन्तामणि है, तब काहूनें कह्या, इस चिन्तामणिके प्रभावतैं निधि विस्तरि रही है, काहूकौं फल दीया था, सो अब तुमहु निधितौ ल्यौ। साक्षात्कार भये सब फल पावहुगे। प्रतीतिमैं चिंतामणि पायेकासा हर्ष भया है। ऐसैं मतिज्ञानी स्वरूपका प्रभाव एकदेशहीमैं ऐसी जागा केवलज्ञानकी शुद्धत्वप्रतीतिद्वार आया सो अशुद्धत्व अंशहु अपना न कल्पै है। स्वसंवेदन मतिज्ञानकरि भया है। ज्ञानप्रकाश अपना है। ऐसैं श्रुतमैं विचारै, मैं मनन कीया॥

सो कैसा हौं? ज्ञानरूप हौं, आनन्दरूप हौं। ऐसैं च्यारि ज्ञानमैं स्वसंवेदनपरि-

णतिकर तौ प्रत्यक्ष है। ज्ञान अवधिमनःपर्ययके जानवेतैं एकदेशप्रत्यक्ष। काहेतैं सर्वावधिकरि सर्व वर्गणा परमाणुमात्र देखै, तातैं एकदेशप्रत्यक्ष। मनःपर्ययहू परमनकी जानै, तातैं एकदेशप्रत्यक्ष है। केवल सर्वप्रत्यक्ष है। अपना जानना ज्ञानमात्र वस्तुमैं जो प्रतीति भई, तातैं सम्यक् नाम पाया। ज्ञानमात्र वस्तु तौ केवलज्ञान भये शुद्ध, जहांतक केवल नही तहांतक गुपत, केवलज्ञानमात्र वस्तुकी प्रतीति प्रत्यक्ष करिकरि स्वसंवेदन बढा है॥

जघन्यज्ञानी कैसैं प्रतीति करै? सो कहिये हैं॥ मेरा दर्शनज्ञानका प्रकाशप्रदेश मेरेतैं उठै है। जानपना मेरा मै हौं। ऐसी प्रतीति करता आनन्द होय सो निर्विकल्पसुख है। ज्ञान उपयोग आवरणमैं गुप्त है। जानिमैं आवरण नाहीं। काहेतैं? जेता अंश आवरण गया, तेता ज्ञान भया, तातैं ज्ञान आवरणतैं न्यारा है, सो अपना स्वभाव है। जेता ज्ञान प्रगट्या तेता अपना स्वभाव खुल्या, सो आपा है। इतना

विशेष आवरणकौं गयेहू परमैं ज्ञान जाय, सो अशुद्ध। जो जेता अंश जिनमैं रहै, सो शुद्ध। तातैं गुपत केवल है। परि परोक्षज्ञानमैं प्रतीति निरावरणकी करिकरि आनन्द बढाईये। ज्ञानी शुद्धभावनातैं शुद्ध होय, यह निश्चय है। 'या मतिः सा गतिः' इति वचनात्। अपना स्वरूप साक्षात् कैसैं होय? सो कहिये हैं॥

प्रथम निर्मलत्वभावतैं संसारके भाव अधो करैं। कैसैं करैं सो कहिये हैं। दृश्यमान जो सब रूपी जड, तामैं ममत्व न करना। काहेतैंभी जड तामैं आपा मानै सुख कहा? शरीरादि जड तामैं आपा मानै सुख कहा? अर राग द्वेष मोह भव भाव, असाताभाव, तृष्णाभाव, अविश्रामभाव, अस्थिरभाव, दुःखभाव, आकुलभाव, खेदभाव, अज्ञानभाव यातैं हेय हैं॥ आत्मभाव, ज्ञानमात्रभाव, शान्तभाव, विश्रामभाव, स्थिरताभाव, अनाकुलभाव, आनन्दभाव, तृप्तिभाव, निजभाव उपादेय हैं॥

आत्मपरिणतिमैं आत्मा है। मैं हौं ऐसी परिणतिकरि आपा प्रगटै। आपामैं

परिणति आई मै हौंपणाकीं मानि स्वपदका साधन है। मैमैं परिणाम में कहे हौं। मैमैं परिणामोंनै स्वपदकी आस्तिक्यताकरि स्वपदपरिणामाविना ठावा योग्य स्थान न होय। कायचेष्टा नही। वचनउच्चारणा नहीं। मन चिन्तवन नहीं। आत्मपदमैं आपकी मग्नता स्वरूपविश्राम, आनन्दरूप पदमैं स्थिरता चिदानन्द, चित्परिणतिका विवेक करना। चित्परिणति चिदमैं रमै, आत्मानन्द उपजै। मनद्वार विवेक होय परि मन उरै रहै। मन पर है ज्ञान निजवस्तु है। सो ऐसैं विचारतैं दूरि रहे है। काहेतैं? परमात्मपद गुप्त है। ताकी मन व्यक्त भावना करत संकै है। काहेतैं? परमात्मभावना करत करत परमात्मपद नजीक आवै, तब परमात्माके तेजतैं मन पहल्यौंही मरि निवरै (निवृत्त होय) है। काहेतैं? सूरिमाका तेजतैं कायर विनासंग्रामही मरै। सूर्यके तेजतैं अंधकार पहल्यौंही नाश होय जाय, तैसैं जानियौ॥

चिदानन्द भावनातैं चित्परिणति शुद्ध होय। चित्परिणति शुद्ध भये चिदानन्द

शुद्ध होय है। अनात्मपरिणाम मेटि आत्मपरिणाम करनाही कृतकृत्यपणा है। योगीश्वरभी इतना करे हैं। प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि याहीके निमित्त हैं। स्वरूपपरिणाममैं अनन्तसुख भया। निजपद आस्तिक्यता भई। अनुपपदमैं लीनता भई। एक स्वरस भया, शुद्ध उपयोग भया। अनुभव सहजपदका भया। महिमा अपार आपपरिणामकी है। परिणाम आपके कीये विना परमेश्वर परपरिणामतैं गोता खाय है। अपने परिणाम स्वरूपानन्दी भये, परमेश्वर कहाया। ऐसा प्रभाव आत्मज्ञानपरिणामका है। अपूर्वलाभ अविनाशीपदका भया परिणमनतैं। सो परिणाम कैसैं स्वरूपमैं लागै? सो कहिये हैं॥

परपराङ्मुख होय वारंवार स्वपद अवलोकानिके भाव करै। दर्शन ज्ञान चारित्र चेतनाका प्रकाश ठावो करिकरि स्वरूपपरिणति करै। आत्मज्योति अनात्मसौं भिन्न अखण्डप्रकाश आनन्दचेतनास्वरूप चिद्विलासका अनुभवप्रकाश परिणामकरि प्रकाशै।

परिणाम जातैं उठ्या तामैं परिणाम लगावै। ज्ञानवारैं परिणाम न करै। परिणाम रङ्गचेतना अङ्ग अभङ्गमैं अन्तरङ्ग लीन भया करै। अमरपुरीनिवास निजबोधके विकासतैं व्है। निश्चय निश्चल अमल अतुल अखण्डित अमिततेज अनन्तगुणरत्नमण्डित ब्रह्माण्डको लखैया। ब्रह्मपद पूर्ण परमचैतन्यज्योतिःस्वरूप अरूप अनुप त्रैलोक्यभूप परमातमरूप पद पाय पावन होय रहै। सो अनुभवकी महिमा है ॥

यथार्थज्ञान, परमार्थनिधान, निजकल्याण, शिवस्थानरूप भगवान् अम्लान-सुखवान् निर्वाणनिधि निरुपाधि निजसमाधि साधिये आराधिये। अलख अज आनन्द महागुणवृन्द धारी अवकारी सब दुःखहारी बाधारहित महित सुरस रससहित निरंशी कर्मको विध्वंसी, भव्यको आधार, भवपारको करणहार, जगत्सार, दुर्निवारदुःख चूरै। पूरै पद आप भवताप पुण्यपापकौं मिटायकैं, लखाय पद आतम दरसाय देत चिदानन्द, सदा सुखकन्द निरफंद लखावै, अविनाशी पद पावै, लोकालोक झलकावै, फेरि

भवमैं न आवै, सब वेद गुण गावै। ताहि कहां लौं बतावै? वैनगोचर न आवै। यह परम तत्त्व है, अतत्त्वसौं अतीत जामैं नांहि विपरीत करणी, भवदुःखनकी भरणी, हितहरणी अनुसरणी अनादिकीही मोहराजानैं बनाई। जगजीवनकौं भाई, दुःखदाई ही सुहाई, या अज्ञान अधिकाई, जातैं लगी बहु काई। ज्ञानरीति उरि आनी। विपरीत करणको भानी। साधकता साधि महा होइ। निजध्यान आनन्द सुधाको है पान। मोक्षपदको निदानी इदानींही समयमैं स्वरसी वशी भये हैं। इन्द्रियचोर कसी, काय निरताय निहाऱ्यो पद परमेश्वरस्वरूप अघटघटमैं। व्यापक अनुप चिद्रूपकौं लखायो। भ्रमभावकौं मिटायो। निज आपतत्त्व पायो। दरसायो देव अचल अभेव टेव। सासतीको निवासी सुखरासी भवसौं उदासी हो लहै। बाहरि न वहै। निजभावहीकौं चहै। स्वपदका निवास स्वपदमैं है। बहिरङ्गसंगमैं ढूंढि ढूंढि व्याकुल भया जैसैं मृग वासकौं ढूंढै, कहूं परजायगां न पावै, तैसैं पद आपकौं परमैं न पावै॥ मोहके विकारतैं आपा

न सूझे। सन्तनके प्रतापतैं गुण अनन्तमय चिदानन्द परमात्मा तुरंत पावै ॥ परपद आप जहांताईं तहांताईं सरागी भया व्याकुल रहै। ज्ञानदृष्टिसौं दर्शनज्ञानचारित्रकौं एक पदस्वरूप अवलोकन करतही पर मानिकी तुरत हानि होय। रागविकार मिटतही वीतरागपद पावै। तब अनाकुल भया अनन्तसुख रसास्वादी होय आपा अमर करै ॥ जैसैं कोई राजा मदिरा पीय निन्द्य स्थानमैं रति मानै, तैसैं चिदानन्द देहमैं रति मानि रह्या है। मद उतरै राजपदका ज्ञान होय राजनिधान विलसै, स्वपदका ज्ञान भये सच्चिदानन्द सम्पदा विलसै ॥

कोई प्रश्न करै, ज्ञान तौ जानपणारूप है, आपकौं क्यौं न जानै? ताका समाधान, जानपणा अनादि परसौं व्यापि परहीका हो रह्या है। अब ऐसा विचार करै, तैं शुद्ध होय। यह परका जानपणाभी ज्ञानविना न होय। ज्ञान आत्माविना न होय। तातैं परपदका जाननहारा मेरा पद है। मेरा ज्ञान मैं हौं। परविकार पर हैं। जहां जहां

जानपणा, तहांतहां मैं ऐसा दृढभाव सम्यक्त्व है। सो सुगम है, विषम मानि रह्या है। मोहमद वाऱ्यो ज्ञान अमृत पीय उतरि ब्रह्मपदकौं सँभारि, डारि भवखेद, भेद पाय निजसौं, अभेद आपपदकौं पिछानि, त्यागि परवाणी, जाणि चिदानन्द, मोह मानि भानिकै, गुणकौ ग्राम अभिराम सुखधामरूप सोही है स्वरूप। सोही भावमोक्षको उपाय उपेयकौ साधै, शुद्ध आतम आराधै। योही शिवपंथ निर्ग्रन्थ वहू साधि साधि, समाधिकौ पाय, परमपदकौं पहुंचै। अपना चेतनाप्रकाश मोहविकारकौं पाय, मैला भया। भेदज्ञान जडचेतनका निखारा करै। ताकौं उरमैं धरिकरि निजज्ञानका अभ्यास वारंवार सार अविकार अपना अखण्डरूप जानि अनुभव उर आनि महामोह हठ भानि स्वरूपरस अपने स्वभावमैं है। तिस स्वभावकौं निज उपयोगमैं ठावा करै। स्वरूपकी उपयोगशक्ति कर्ममैं गुप्त भई तौ कहा शक्तिकौ अभाव मानियै॥

जैसैं काहूको पुत्र घरमें है, बाजारमैं काहूनैं बूझ्यो, तौ कहै हमारे पुत्र है।

अभावं न कहै। व्यवहारमैंहू यह रीति है। छतैकौं अनछतो न करै। चिदानन्द तेरौ अचिरज आवतु है। दर्शनज्ञानशक्ति छती करि अनछती राखी है। जैसैं लोटनजडीकौं (जटामांसी जिसको बिल्लीलोटन कहते हैं) देखि बिल्ली लोटै है, तैसैं मोहतैं संसारभ्रमण है। नै कहूं इतैं स्वरूपमैं आवै तो त्रिलोकको राज्य पावै। सो तौ दुर्लभ नाहीं ॥ जैसैं नर पशुस्वांग धरै तौ पशु न होय, नरही है। तैसैं आत्मा चौरासीके स्वांग करै तौऊ चिदानंदही है। चिदानंदपणो दुर्लभ नाहीं ॥ जैसैं कोई काठकी पूतरीकौं सांची नारी मानि वाकौं बुलावै, चाहि करै, वाकी सेवा करै, पीछैं जानै काठकी, तब पछितावै। तैसैं जडकी सेवा करै है। अज्ञानी भया जडमैं सुख कल्पै है। ज्ञानी होय जब झूठ मानि तजै ॥

जैसैं मृग मरीचिकामैं जल मानै है, तैसैं परमैं आपा मानै है। तातैं सांचे ज्ञानतैं वस्तु जानौ तबही भ्रम मिटै। वारंवार सार सांचो उपदेश श्रीगुरु कहै हैं।

आपहू जानै है। अविद्याको आवरण है ताकरि झूंठको सांच मानि रह्यो है। त्रिंबक (तीन जगहतैं वांकी ऐसी रस्सी) जेवरीमैं सर्प त्रिकाल नाहीं, तैसैं ब्रह्ममैं अविद्या नाहीं। सो सारे समुद्रके जलसैं धोयेहू देह अपावन है। ताकौं पावन मानि रह्यौ है। ऐसी धिठौंही पकरी है। जोरावरी ठीकरीकौ रुपयो चलावै सो न चालै। अपनी भूलि न तजै तौ अपनी हांसी खलकमैं आप करावै। कै देखो अनन्तज्ञानको धनी भूलि दुःख पावै है। हांसीके भये जन सरमिंदो होय। फेरि हांसीको काम न करै। याकी अनादिकी जगतमैं हांसी भई है। लाज न पकरै है। फेरि फेरि वाही झूठी रीतीकौं पकरै है। जाकी बातहूके कीये अनुपम आनन्द होय, ऐसो अपनो पद है। ताकौं तौ न ग्रहै। परवस्तुकी ओर देखतही चौरासीको बंदीखानो है, ताकौं बहोत रुचिसेती सेवै है। ऐसी हठरीति विपरीति रूपकौ अनुप मानि मानि हर्ष धरै है। जैसैं साँपकौ हार जानि हाथ घालै तौ दुःख होयही होय तैसैं रुचिसेती परसेवनतैं संसारदुःख होयही होय॥

जैसैं एक दृष्टिबन्धवालो नर एक नगरमैं एक राजाके समीप आय रह्यो। केतेक दिनपीछैं राजा मूवौ। तब वा नरनैं राजाकौ मूवो न जनायो। राजाकौ तो वहुत उंडो गाडि माटी दे, ऊपरि बेमालुम जायगां करि दृष्टिबन्धसौं काठकौं राजा दरबारमैं बैठायो। दृष्टिबंधसूं सबकौं सांचौ भासै। जब कोई राजाको बूझै, तब वो नर जुबाब दे, तब लोक जानै, राजा बोलै है। ऐसो चारित्र दृष्टिबन्धसौं कीयो। तहां एक नर वनकी बूँटी सिरपरि टाँगि आयो, उस बूँटीके वलतैं वाकी दृष्टि न बंधी। तब वह नर लोककौ कहनै लाग्यो, रे कुबुद्धि जन हो! काठकौ प्रत्यक्ष देखिये है। तुम याकौ साचौ राजा जानि सेवो हो, धिकार है तुमारी ऐसी समझिकौ। तैसैं ये संसारी सब इनकी दृष्टि मोहसौं बंधी, परकौ आपा मानि सेवै हैं। परमैं चेतनाका अंशहू नाही। ज्ञान जाकै भयो, सो ऐसै जानै है, ये संसारी कुबुद्धि जडमैं आपा करि मानै हैं। दुःख सहै हैं। धिक्कार इनकी समझिकौ! झूठ हठ दुःखदायको सुखदायक जानि सेवै हैं !!

जैसैं काहूको जन्म भयो, जन्मतैंही आँखि परि, चामडीकौ लपेटौ चल्यो आयो माहिसूं आँखिकौ प्रकाश ज्यौंको त्यौं बाह्य चर्म आवरणसौ आपकौ न दरसे। जब कोऊ तबीब मिल्यो, तानैं कही, याकै मांहि प्रकाश ज्योतीरूप आखि सारी है। वानैं जतनकरि चर्मको लपेटौ दूरि कीयो, तब शरीर आपकौं आपही देख्यौ, औरभी दरसै लाग्यौ। याप्रकारि अनादि ज्ञानदर्शन नैन मुद्रित भये चले आये आप स्वरूप न देख्यौ। जब श्रीगुरु तबीब (नेत्रवैद्य) मिले, तब ज्ञानावरण दूरि करणको उपाय बतावतही याकै श्रद्धान करि दूरिही भयो। तब आपणौ अखण्ड ज्योतिःस्वरूप पद आप देख्यो, तब अनन्तसुखी भयो ॥

जेवरीमैं सांप नही, सीपमैं रूपो नही, भाडलीमैं (मृगतृष्णा) जल नही, काचमन्दिरमैं दूजो स्वान नही, मृगबारैं बास नही, नलनीकौ सूवो काहूनें पकर्‍यौ नाहि, वानराकी मूठी काहू पकरी नहि, सिंह कूवामैं दूजो नहीं, ऐसैं कोऊ

दूजो नही, आपहीकी भूलि झूठी, तातैं आप दुःख पावै है। दूजो मानि मानि दुःख पावे है। सांच जानै सदा सुखी होईये ॥ यह आतमा सुखके निमित्त अनेक उपाय करै है। देश देश फिरै, लक्ष्मी कमाय सुख भोगवै। अथवा परीषह अनेक सहै, परलोक सुखनिमित्तका निधान निजस्वरूपकौ न जानै। जानै तौ तुरत सुखी होय ॥

जैसैं सब जनकी गांठडीमैं लाल हैं, वे सब मसकती होय रहे हैं। जो गठडी खोलि देखै, तौ सुखी होय। अन्धले तो कूपमें परै अचिरज नही। देखता परै तो अचिरज। तैसैं आत्मा ज्ञाता द्रष्टा है, अरु संसारकूपमैं परै है, यह बडा अचिरज है। मोह ठगनैं ठगोरी इसके सिर डारी, तिसतैं परघरहीकौं आपा मानि निजघर भूल्या है, ज्ञानमन्त्रतैं मोह ठगोरीनैं उतारै, तब निजघरकौं पावै। बारबार श्रीगुरु निजघर पायवेको उपाय दिखावै है। अपने अखण्डित उपयोगनिधानकौं ले अविनाशी राज्य

करि। तेरी हरामजादगीतैं अपना राजपद भूलि कौडी कौडीकौं जांच कंगाल भया है। तेरा निधान ढिगही था, तैं न संभाल्या। तातैं दुःखी भया॥

जैसैं चांपा (नामका) गवाल धतूरैकौं पीय उन्मत्त भया मैं चांपा नाहीं, चांपाके घर पीछैं ठाढा होय हेला दीया, चांपा घरि है? तब उसकी नारीनैं कह्या, तूं कौन है? तब चेत भया मैं चांपा हौं। तैसैं श्रीगुरु आपा बताया है। पावै ते सुखी होय। कहांलौं कहिये? यह महिमानिधान अम्लान अनूपपद आप बण्या है, सहज सुखकन्द है, अलख अखण्डित है, अमिततेजधारी है॥ दुःखद्वन्द्वमैं आपा मानि अति आनन्द मानि रह्या है। अनादिहीका सो यह दुःखकी मूल भूलि जबही मिटै, श्रीगुरुवचन सुधारस पीवै। चेत होय परकी ओर अवलोकन मिटै। स्वरूप स्वपद देखतही तिहूं लोकनाथ अपना पद जानै। विख्यात वेद बतावै हैं॥

नटवा स्वांग धरे नांचै है। स्वांग न धरै पररूप नाचना मिटै। ममत्वतें पररूप

होय होय चौरासीका स्वांग धरि नांचै है। ममत्व मेटि सहजपदकौं भेटि थिर रहैं, तौ नांचना न होय। चंचलता मेटै चिदानन्द उधरै है, ज्ञानदृष्टि खुलै है। नैक स्वरूपमें सुथिर भये गतिभ्रमण मिटै है। तातैं जे स्वरूपमैं सदा स्थिर रहैं, ते धन्य हैं॥

अपनी अवलोकनिमैं अखण्ड रसधारा वर्षै है, ऐसा जानि, निज जानि, पर मेटि, यह मैं सुखनिधान ज्योतिःस्वरूप परमप्रकाशरूप अनुपपदरूप स्वरूप इस आकाशवत् अविकारपदमैं चिद्विकार भया, परसंयोगतैं। इहां तौ परके अवकाश न था। कैसैं अनादि ठहऱ्या? तहां कहिये हैं॥

नकखानमैं कनक चिरहीका गुप्त है। तैसैं आत्मा कर्ममैं गुप्त अनादिहीका है। अनादितैं अशुद्ध उपयोग अशुद्धता लगी है, सो देखि। कैसैं लगी है,

॥

ध मान माया लोभ इन्द्रिय मन वचन देह गति कर्म नोकर्म धर्म अधर्म

आकाश काल पुद्गल अन्यजीव जीतनेक परवस्तु हैं तितने आपकरि जानिये है। सो मैही हौं, मै इनका कर्त्ता हौं, यो मेरे काम हैं, "मै हौं सो ये हैं, ये हैं सो मै हौं" ऐसैं परवस्तुकौं आपा जानै, आपकूं पर जानै, तत्र लोकालोककी जाननेकी शक्ति सर्व अज्ञानभावकूं परणई है। सोई जीवको ज्ञानगुण अज्ञानाविकार भया। यौंही जीवका दर्शनगुण था। जेते परवस्तुके भेद हैं, तिनकौं आपकरि देखै है, ये मै हौं, आपा परमैं देखै है, आपाकौं पर देखै हैं। लोकालोक देखनेकी जेती शक्ति थी, तेती सर्व शक्ति अदर्शनरूप भई। यौंकरि जीवका दर्शनगुण विकाररूप परणम्या। अर जीवका सम्यक्त्वगुण था, सो जीवके भेदनकौं अजीवकी ठीकता करै है। चेतनकौं अचेतन, अचेतनकौं चेतन, विभावकौं स्वभाव, स्वभावकौं विभाव, द्रव्य अद्रव्य, गुण अगुण, ज्ञानकौं ज्ञेय, ज्ञेयकौं ज्ञान, आपकौं पर, परकौं आप यौंहीकरी और सर्व विपरीतिकौं ठीकता आस्तिक्य भावकौं करै है। यौं जीवका सम्यक्त्व गुण मिथ्यारूप परणम्या। और जीव

स्वआचरण गुण था, जेतीक परवस्तु है तिसी परकौं स्वआचरणकरि कीया करै, परविषैं तिष्ठ्या करै, परहीकौं ग्रह्या करै, अपनी चारित्रगुण सब शक्ति परविषैं लगि रही है, यौं जीवका स्वचारित्रगुण विकाररूप परिणमै है ॥

अवर इस जीवका सर्व स्वरूप परिणमनेका बलरूप सर्व वीर्यगुण था, सो निर्बल रूप होय परिणम्या स्वरूपपरिणमनेका बल रहि गया निर्बल भया परिणम्या। यौंकरि जीवका वीर्यगुण विकाररूप परिणम्या ॥ अवर इस जीवका आत्मस्वरूप रस जो परमानन्द भोगगुण था, सो परपुद्गलका कर्मत्व व्यक्त साता असाता पुण्यपापरूप उदय परपरिणामके बहुभांति विकार चिद्विकार परिणामहीका रस भोगव्या करै रस लीया करै, तिस परमानन्द गुणकी सर्वशक्ति परपरिणामहीका स्वाद स्वाद्या करै। सो परस्वाद परम दुःखरूप। यौंकरि जीवका परमानन्दगुण दुःखविकाररूप परणम्या ॥ यौंहीकरि इस जीवके अवर गुण ज्यौंज्यौं विकारी भये हैं, त्यौंत्यौं ग्रन्थान्तरतैं जानि लेने ॥

इस जीवके सर्व गुणहीके विकारकौं चिद्विकार नाम सङ्क्षेपसूं कहना ॥ गुण गुणकी अनन्ती शक्ति कही सत्ताकी है शक्ति अनन्तगुणमैं विस्तरी। सब गुणकी आस्तिक्यता सत्तातैं भई। सत्तानैं सामता सबकौं राख्या। अनन्तचेतनाका स्वरूप असत्ता होता तौ चिच्छक्तिरूप चेतना अविनाशी महिमा न रहती। सच्चिदानन्द-विना अफल भये किस कामके? तातैं सच्चिदानन्दरूपकरि आतमा प्रधान है। अरूपी आत्मप्रदेशमैं सर्वदर्शनी सर्वज्ञत्व स्वच्छत्व आदि अनन्तशक्तिका प्रकाश है, ते उपयो-गके धारी अविकारी कर्मत्वकरि आवरै, सङ्कोचविस्तार शरीराकार भये। आत्मा आकाशवत् कैसैं सङ्कोचविस्तार धरै? पुद्गल संकुचै विस्तरै, तौ काष्ठ पाषाण घटते बढते होय। सो चेतनाविना न बढै। चेतनही बढै घटै, तौ सिद्धके प्रदेशका विस्तार होय कै घटि जाय, सोभी नाही। जडचेतन दोन्यौं मिले संकोच विस्तार है। परदे-शमैं सब गुण कहे हैं। परि संसार अवस्थातैं मोक्षमार्गकी चाढि न भई। तहां सम्यग्द-

र्शनज्ञानचारित्र मोक्षमार्ग कह्या । इनकी जेती जेती विशुद्धि होत भई, तेता मोक्षमार्ग भया ॥

निश्चयमोक्षमार्ग दोयप्रकार, सविकल्प निर्विकल्प । मै "अहं ब्रह्म अस्मि" ऐसा भाव आवै निर्विकल्प वीतराग स्वसंवेदन समाधि कहिये । लोकालोक जाननेकी शक्ति ज्ञानकी, स्वसंवेदन जेता भया, तामैं स्वज्ञानविशुद्धताके अंश होत भये । सो ज्ञान सर्वज्ञशक्ति मैं अनुभव कीया । जेता ज्ञान भया शुद्ध, तेता अनुभवमैं सर्वज्ञानकी प्रतीतिभाव वेदना ऐसा भया । सर्वज्ञानका प्रतीतिभावमें आनन्द बध्या । ज्ञान विमल अधिक होत भया । ज्ञानकी विशुद्धताकौं ज्ञानके बलका प्रतीतिभाव कारण है । ज्ञान परोक्ष है । परपरिणतिके बल आवरणके होतैभी उस स्वसंवेदनमैं स्वजातिक सुख भया, ज्ञानस्वरूपका भया । एकदेश स्वसंवेदन सर्व स्वसंवेदनका अङ्ग है । ज्ञानवेदनामैं वेद्या जाय है साक्षात् मोक्षमार्ग है । स्वसंवेदन ज्ञानीही जानै है । स्वरूपतें परिणाम वारैं भया,

सोही संसारस्वरूपाचरणरूप परिणाम सोही साधक अवस्थामैं मोक्षमार्ग, सिद्धि अवस्थामैं मोक्षरूप है। जेता जेता अंश ज्ञानबलतैं आवरण अभाव भया, तेता तेता अंश मोक्ष नाम पाया। स्वरूपकी वार्ता प्रीतिकरि सुणै, तौ भावी मुक्ति कही। अनुपम सुख होय अनुभव करै, तिनिकी महिमा कौन कहि सकै?

जेता स्वरूपका निश्चय ठीक भावै, तेता स्वसंवेदन होय एक भये, तीनौंकी सिद्धि है। गुप्त शुद्धशक्ति सिद्धिसमानमैं परिणति प्रवेश करै। ज्यौं ज्यौं शुद्धताकी प्रतीतिमैं परिणति थिर होय, त्यौं त्यौं मोक्षमार्गकी शुद्धि होय। ज्यौं कोई अधिक कोस चालै तब नगर नजीक आवै, त्यौं शुद्धस्वरूपकी प्रतीतिमैं परिणति अवगाढ गाढ दृढ होय, मोक्षनगर नजीक आवै। अपनी परिणति खेल आप करि आप भवसिन्धुतैं पार होय। आप विभावपरिणतितैं संसार विषम करि राख्या है। संसार मोक्षकी करणहारी परिणति है। निजपरिणति मोक्ष, परपरिणति संसार। सो यह सतस-

ज्ञतैं अनुभवी जीवनिके निमित्ततैं निजपरिणति स्वरूपकी होय, विषम मोह मिटै, परमानन्द भेटै। स्वरूप पायवेका राह संतोंनैं सोहिला (सरल) कीया है ॥

चौरासी लाख योनि सरायका फिरनहारा कबहू कहूं थिररूप निवास न कीया। जबतक परमज्योति अपनें शिवघरकौं न पहुंचै, तबतक कार्यभी न सरै। कहा भया जो तपी जपी ब्रह्मचारी यति आदि बहुत भेष धरै, तौ तातैं निज अमृतके पीवनेतैं अनादि भ्रम खेद मिटै। अजर अमर होय तत्त्वसुधा सेवनेका मार्ग कहा? सो कहिये हैं ॥

अपनैं चिदानन्दस्वरूपकौं अवलोकि अनुभव करि। कैसैं? सकल अविद्यातैं मुक्ति तत्त्वकी कौतूहली होय। निजानन्द केलि कलाकरि स्वपदकौं देखि। अनातमका सङ्ग फिरि न रहै अनादिमोहके वशतैं। निज हितअहितमैं भेदज्ञानतैं ज्ञानचेतनका अनुभव करि अनादि अखण्ड ब्रह्मपदका विलास तेरै ज्ञानकटाक्षमैं है ॥

अज्ञानपटल जब मिटै, सद्गुरुवचन अञ्जनतैं पटल दूरि भये ज्ञाननयन प्रकाशै, तब लोकालोक दरसै। ऐसा ज्ञान ताकी महिमा अपार, अनेक मुनि पार भये। ज्ञानमय मूरतिकी सूरतिका सेवन करि करि अपने सहजका ख्याल है। सहज बोध कलाकरि सुगम, कष्टक्लेशतैं दूरि है। परपरचेमैं विषम लहरी तुरत चढै। अमृतसेवनतैं सुरततृप्ति हो सुख पावै। काहेतैं? अफीम खाये विषकी नहीं। अनन्तसुखनिधानस्वरूप भावनाके करतही अविनाशी रस होय, ता रसकौं संत सेय आये। तूं ताकौं सेय। श्रेयपदरूप अनूप ज्योतिःस्वरूप पद अपनाही है। अपनैं परमेश्वरपदका दूरि अवलोकन माति करैं। आपहीकौं प्रभु थाप्या, जाकौं नेक यादि करि, ज्ञानज्योतिका उदय होय, मोह अन्धकार विलय जाय, आनन्दसहित कृतकृत्यता चित्तमैं प्रकटै। ताकौं वेगि अवलोकि, आन ध्यानता निवारि विचारिकै संभारि, ब्रह्मविलास तेरा तोमैं है। यातैं कहा अधिक? जो, याकौं छोडि तूं परकौं ध्यावै

च्यारि वेद भेद लहि, गहि स्वरूप सुखरूप तेरी भावनामैं अविनाशी रस चोवा चूवै है। सो भावनाकरि भ्रमभाव मेट, तेरी भावनाही झूठेही भव बनाया है। ऐसा बदफैल स्वभाव कल्लोलके प्रगट होतैंही मिटै है ॥

देखि, तूं चेतन है। जड अजान है। तैं अजानमैं आपा मान्या, अशुद्ध भया, तेरी लैर अजान न परै है। तूं अपने पदतैं ईघैंकौं (इधरको) माति आवै। तेरा जड कछु पल्ला न पकरै है। अनाहिक (व्यर्थही) बिरानी वस्तुकौं अपनी करि करि झूठी हौंस करै। यह हमैं भोगसुख भया, हम सुखी हैं। झूंठी भरम कल्पना मानि मोद करै है। किछुभी सावधानीका अंश नाही। यह कोई आचिरज है, तिहूं लोकका नाथ होय अपने पूज्यपदकौं भूलै। नीच पदमैं आपा मानि विकल होय व्याकुलरूप भया डोलै है ॥

जैसैं कोई एक इन्द्रजालका नगरमैं रहै। तहां इन्द्रजालीके वश हुवा इन्द्रजा-

लके हाथी, घोरे, नर, सेवक, स्त्री सब; तिसमैं काहूकौं हुकम करै है। सेवक आय सलाम करै, स्त्री नृत्य करै। हाथी चढै। घोडा दौडावै। इन्द्रजालमैं सांचि जानै। विकलता धरि कबहूं काहूके वियोगतैं रोवै। दुःखी होय छाती कूटै। कबहू काहूका लाभ मानि मोद करै। कबहू शृङ्गार बनावै। कबहु फौज देखै। सब कहै इन्द्रजाल झूंठ है, उनमैं रंच सांच नांही। ऐसैं देव, नर, नारक, तिर्यंचके शरीर जड हैं। चेतनका अंश नांही, भ्रमतैं शृङ्गारै। खान पान चोवा (अर्क चूआ) लगावनादि अनेक जतन करैं। झूंठहीमैं मोद मानि मानि हरखै। मूवेसैं जीवता सगाई करै! कार्य कैसैं सुधारै?

जैसैं श्वान हाडको चावै, अपने गाल गल मसोडैका रक्त उतरै, ताकौं जानै भला स्वाद है! ऐसैं मूढ आप दुःखमैं सुख कल्पै है! परफंदमैं सुखकन्द सुख मानै! अग्निकी झाल शरीरमैं लगै, तब कहै, हमारै ज्योतीका प्रवेश होय है। जो कोई

अग्निझालकूं बुझावै, तासौं लरै! ऐसैं परमैं दुःखसंयोग, परका बुझावै तासौं शत्रुकीसी दृष्टि देखै! कोप करै! इस परजोगमैं भोग मानि भूल्या, भावना स्वरसकी यादि न करै। चौरासीमैं परवस्तुकौं आपा मानै। तातैं चोर चिरहीका (चिरकालका) भया। जन्मादि दुःखदण्ड पाये तौहू चोरी परवस्तुकी न छूटै है। देखो! भूलि तौहू लोकका नाथ नीचपरकै आधीन भया। अपनी भूलितैं अपनी निधि न पिछानै। भिकारी भया डोलै है। निधि चेतना है सो आप है। दूरि नांही। देखना दुर्लभ है। देखै सुलभ है॥

किसीनैं पूछा, तूं कौन है? वानैं कह्या, मैं मडा (मुर्दा मरा हुवा) हौं तौ बोलता कौन कह? मैं जानता नाहीं। तौ मैं मडा हौं ऐसा किसनैं जान्या? तब सँभाऱ्या, मैं जीवता हौं। ऐसैं यह मानै, मैं देह हौं तौ यह देहमैं जो मानना कीया सो कौन है? कहै, मैं न जानौं ऐसा ल्यावना किसनैं कीया? यह आपाकौं खोजि देखनै

जाननै परखनेमैं स्वरूप संभारै, तब सुखी होय है। जैसैं कोई मादिरा पीय उन्मत्त पुरुषाकार पाषाण थंभकौं देखि सांचा जानि उससौं लर्‍या। वह ऊपरि आप नीचै आपही भया। वाकौं कहै, मैं हार्‍या। ऐसैं परकौं आपा मानितैं दुःखी भया। कोई दूजा नाही। दुःखदाता तेरी भावना भव बनाया, नापैद पैदा कीया, अचेतनकौं चलाया मूवेका जतन अनादिका करता है। आपसा तू करता है झूठी मानिमैं तेरा कीया कछु जड चेतन न होय। तूंही ऐसी झूंठी कल्पनातैं दुःख पावता है। तेरा क्या फायदा है? तूही न विचारै है। मेरा फंद मै पारत हौं। कछु सिद्धि नांही। विनु विचारतैं अपनी निधि भुल्या। अनन्तचतुष्टय अमृत मैला कीया। चेतना मेरा पाड्या फंद ऐसा है। आकाश बांधा है। अचरज आवै है। परि जो केवल अविद्या याही होती तो तू न आवर्‍या जाता ॥

अविद्या जड छोटी शक्ति, तेरी मोटी शक्ति, न हती जाती। परी तेरि शुद्ध-

शक्तिभी बडी, तेरी अशुद्धशक्तिभी बडी। तेरी चितवनी तेरै गरै परी। परकौं देखि आपा भूल्या। अविद्या तेरीही फैलाई है। तूं अविद्यारूप कर्म न परि आपा न दै, तौ किछु जडका जोर नहीं। तातैं अपरंपार शक्ति तेरी है। भावना परकी करि भव करता भया। निजभावनातैं अविनाशी अनुपम अमल अचल परमपदरूप आनन्दघन अविकारी सार सत् चिन्मय चेतन अरूपी अजरामर परमात्माकौं पावै है। तौ ऐसी भावना क्यौं न करिये? इस अपने स्वरूपहीमैं सर्व उच्चत्व सकलपूज्य पद परमधाम अभिराम आनन्द अनन्तगुण स्वसंवेदरस स्वानुभव परमेश्वर ज्योतिःस्वरूप अनूप देवाधिदेवपणै इत्यादि सब पाइयै। तातैं अपणो पद उपादेय है। अर अवर पर हेय है। एकदेशमात्र निजावलोकन ऐसा है। इन्द्रादिसम्पदा विकाररूप भासै है। जिसकै भये तैं अनन्त सन्त सेवन करि अपने स्वरूपका अनुभव करि भवपार भये। तातैं अपने स्वरूपकौं सेवौ ॥

सर्वज्ञदेवनैं सब उपदेशका मूल यह बताया है, एकबेर स्वसंवेदरसका स्वादी होय तौ ऐसा आनन्दमैं मग्न होय, परकी ओर फिरि कबहू दृष्टि न दे। स्वरूपसमाधि सन्तनका चिन्ह है। चिसके भये रागादि विकार न पाइये जैसैं आकाशमैं फूल न पाइये। देह अभ्यासका नाश अनुभवप्रकाश चैतन्यविलास भावका लखाव लखि लक्ष्यलक्षण लिखनेमैं न आवै। लखै सुख होय। स्वादरूप लिखै न होय। आत्मसहित विश्व व्याख्येय, व्याख्या वाणीकी रचना, व्याख्याता व्याख्यान करनहार ये सब बात कछु है, सो मोहके विकारतैं मानिये हैं। अनादि आत्माकी आकुलता एक विशुद्ध बोधकलाकरि मिटै है। तातैं सहजबोधकलाका निरन्तर अभ्यास करो। स्वरूपआनन्दी होय भवोदधिकौं तिरौ॥

नरभव कछु सदा तौ रहै नहि, साक्षात् मोक्षसाधन ज्ञानकला इस भवविना और जायगा न उपजै। तातैं बारबार कहिये है, निजबोधकलाके बलकरि निजस्वरूपमैं

रहो। निरन्तर यह यत्न करो। ऐसा कहाव तौ बारबार बालकहू न करावै। तुम अनन्तज्ञानके धनी होयकरि ऐसी भूलि धरो, सो बडा अचिरज आवै है। सो अचिरजकी बात न करियै। वा महाजड शरीरमैं आपा मानै मोटी हानि है। आपकी जानिमैं सुखसमुद्रकूं पाय अविनाशिपुरीका राजा होय, अनन्तचैतन्यशक्तिराजधानीका विलासी होय है। परमैं आपा मानि तूं ऐसैं दुःख पावै, जैसैं कोई मडेकौ वस्त्र आभूषणादि करै, मानै मै पहरै है! तो जीवता झूठही आपका मानै है। ऐसैं देह जड है। याके भोग तूं आप मानि झूठही काहेकौ जडकी क्रिया आपकी मानै? जैसैं साँप काहूकौं काटै, काहूकौं विष चढै, तौ अचिरज मानियै। जड खाय पहरै, स्नानचोवादि (तैलमर्दन) क्रिया करै, तुम कहो हम खाया, हम भोग कीया, परके स्वामी भये। सो परस्वामीभी यौं न मानैं। जैसैं राजा किङ्करनका स्वामी है। उनके धाये (भोजनसे तृप्त हुये) यौं न कहै धाया हौं। अर तुम देखो, तुमारी ऐसी चाल तुमहीकौं दुःखदायी है॥

जो सुन्दर वस्तु होय तौ ऊपरिकी अङ्गीकार न कीजै। देह अशुचि नवद्वार स्रवै, दीखतहीकी ग्लानिरूप, मांहि सुन्दर होय, तौ बाहिरमें बुरी परी है। सो मांहि विष्ठामूत्रकी खानि न विनसै, तौ ऐसीहू लीजै। विनसौहू जौ आपकौं दुःखदायी न होई, तौ, तातैं ऐसैंको स्नेह तुमही करौ। जन्मादिदुःख भरौ। तुमारी लार जन्मादि अनादिके लगे आये हैं। तूं मोनैं महन्तपुरुषोंकीसी रीतिका भाव किया है, जो हमसौं लगै, तिनकौं न छोडै। यौं तौ महंत न कहावोगे। महंत तौ पापकौं मेटै होय। ये तो पापका रूप है। तातैं तुम समझो। अपने धनको अंग जो विराना धन जाता रहै तुम फेरि ग्रहौ, ताके दण्ड भवदुःख सहौ हो, तौऊ परको लेते थकै नाही। बहुत दुःखी भये परि परग्रहणकी बाण न छोडो हौ। साहपद तौ अपने धनतैं पावोगे। यातैं स्वपरविवेकी होय आतमधन ग्रहौ। परका ममत्वकौं स्वप्नांतरमैं मति करौ। तुमारै अखण्ड रत्नत्रयादि अनन्तगुणनिधान है दरिद्री नाही। जो दरिद्री होय सो ऐसैं काम करै॥

तुमारा निधान श्रीगुरुनैं तुमपैं दिया अब संभारि सुखी होहु। जैसैं काहू नारीनैं अपनी सेजपरि काठकी पूतरीकौं सिंगारी सुवाणी, पति आया तब यौं जानै, मेरी नारी शयन करी है। हेला दे, वा न बोलै, तब पवनादि खिजमति सारी रात्रि-विषैं करी। प्रभात भया, तब जानी मै झूठही सेवा करी। ऐसैं देहकौ सांचा आपा मानि सेवै है। ज्ञान भये जानै, यह झूठ अनादि देहमैं आपा मान्या। चिदानन्द तुम इन्द्रिय पंच चोर पोषौ हौ; जानौ हौ यह हमकौं सुख दे हैं! सो अन्तरके गुण-रत्न ये चोर ले हैं, तुमकौं खबरी नांही। अब तुम ज्ञानखड्ग संभालौ। चोरनकौं ऐसैं रोको फेरि बल न पकरै। विषयकषाय जीति निजरीतिकी राहमैं आवौ। अर तुम शिवपुरकौं पहुचि राज करौ। तुम राजा, दर्शनज्ञान वजीर राजके थंभ, गुण वसति, अनन्तशक्ति राजधानीका विलास करौ। अभेद राज राजत तुह्मारा पद है। अचेतन अपावन अथिरसौं कहा स्नेह करौ? ||

नीकै निहारो। इस शरीरमन्दिरमैं यह चेतनदीपक सासता है। मन्दिर तौ छूटै परि सासता रतनदीप ज्यौंका त्यौं रहै। व्यवहारमें तुम अनेक स्वांग नटकीज्यौं धरे। नट ज्यौंका त्यौं रहै। वह स्पष्टभाव कर्मको है। तौऊ कमलिनीपत्रकीनांई कर्मसौं न बंधै, न स्पर्शै। अन्य अन्य भाव मांटी धरैहू एक है। तैसैं अन्य अन्य पर्याय धरैहू एक है। समुद्र तरङ्गकरि वृद्धि हानि करै, समुद्रत्वकरि निश्चल है, विभावकरि वृद्धि हानि करै। वस्तु निज अचल है। सोनों वान भेद परि अभेद, यो नानाभेद कर्मतैं, परि वस्तु अभेद। फटिकमाणि हरी लालपुडीतैं भासै, स्वभाव श्वेत है। परसौं पर, निज चेतनामैं पर नही। षड्भाव ऊपरि ऊपरि रहै। जलपरि सिवालकीनांई गुप्त शुद्धशक्ति तेरी चिदानन्द व्यक्त करि भाय ज्यौं व्यक्त व्है। तूं अविनाशीरसका सागर। पररस कहा मीठा देख्या? जाके निमित्ततैं संसारकी घुमेरी भई, ताहीकौं भला जानि सेवै है। जैसैं मद पीवनहारा मद पीवता जाय, दुःख पावता जाय, अधिक घुमेरीमैं भला जानि जानि सेवै; तैसैं भूला है॥

जैसैं एक नगरमैं एक नर रहै। नगर सूना, तहां दूजा और नाहीं, सो वो नर उस नगरमैं चौरासी लाख घरि, तिन घरनकौं सदा सवाऱ्याही करै, फिरि दूजे दिन फिरि औरमैं रहै, तब वाकौ संवारै। इस भांति उन भींतडेकौ संवारतैं सवारतैं सारा जन्म वीता। उनके संवारनेतैं रोग भया। जबका संवारै था तबहीका रोग लग्या। आपकी परमचातुरीकौं भूल्या। वा नरकौं बडी विपत्ति, विनाप्रयोजन एकला सूने घरनमैं मसकति उनकी करै। आप अनन्तबलवान् वृथा भूलि दुःख पावै है। इस नरका शहर एक परमवसतीका, वहांका यह राजा है, वहांकौं संभालै तौ सूने घरनकी सेवा तजै, वहांका राज्य करै। तैसैं यह चिदानन्द चौरासी लाख योनिके शरीरनकी संवारना करै। जिस घरमैं रहै वसै संवारै, फिरि दूजी शरीर झोंपडीकौं संवारै, फिरि और पावै, उसकौ संवारता फिरै। सब देह जड, तिन जडनकी सेवा करते करते अनादि वीता। इस शरीरसेवामैं कर्मरोग अनादिका लग्या आया। तिसतैं इस

रोगकरि अपना अनन्तबल छीन पऱ्या, बडी विपत्ति जन्मादि भोगवै है। जडनकौं ऐसा मानै है, मैही हौं ॥

जैसैं वानर एक कांकरा पडै, तब रोवै, ऐसैं याके एक अङ्गभी देहका छीजै, तौ बहुते रोवै। ये मेरै, मै इनका झूठही ऐसैं जडनके सेवनतैं सुख मानै। अपनी शिवनगरीका राज्य भूल्या, जो श्रीगुरुके कहै शिवपुरीकौं संभालै, तौ वहांका आप चेतनराजा अविनाशी राज्य करै। तहां चेतना वसती है। तिहुं लोकमैं आन फिरै न भवमैं फेरि जडमैं न आवै। आनन्दघनकौं पाय सदा सासतां सुखका भोक्ता होय सो करिये ॥

यह परमातम पुरुष तिसकी निजपरिणति अनन्तमहिमारूप परमेश्वरपदकी रमणहारी, सोही मूलप्रकृति पुरुषप्रकृतिका विवेकरूप तरु, तिसके निजानन्द फल तिसकौं तूं रसास्वाद लेकरि सुखी होहु। जैसैं कोई राजाकौ विरानां गढ लेना मुसकिल, तैसैं

इस आतमाकौं परपद लेना मुसकिल है। काहेतैं अनादि परपद लेता फिरै है। परि पररूप न भया, चेतनही रह्या। अरु चेतनापद आतमाका है, इसकौं न भी जानै है, भूल्या फिरै है, तौभी वाकी रहणी निश्चयकरि याहीमैं, यातैं मुसकिल नाहीं, अपना स्वरूपही है। भ्रमका पडदा आपहीनैं अनादिका कीया है। तातैं ना भासै है, आप आपकौं। परि आप आपकौं तजि बाहरि न गया॥

जैसैं नटवेनैं पशुका वेष धर्‍या तौ वह नर नरपणाकौं तजि वारैं न गया। पशु वेष न धरै तौ नरही है। भ्रमतैं परममत्व न करै, तौ देहका स्वांग न धरै, तौ चिदानन्द जैसैका तैसा रहै। जैसैं एक डाबीमैं रतन वाका कछु विगर्‍या नाहीं, गुपत पुडत दूरि करि, काढै तौ व्यक्त है। तैसैं शरीरमैं छिप्या आतमा है, याका कछु न विगर्‍या गुपत है, कर्मरहित भये प्रगट है। गुपत प्रगट अवस्थाभेद है। दोन्यौं अवस्थामैं स्वरूप जैसैका तैसा है, ऐसा श्रद्धाभाव सुखका मूल है। जाकी दृष्टि पदार्थशुद्धिपरि

नाहीं, कर्मदृष्टितैं अवलोकै, सुख कौन पावै? जैसी दृष्टि देखै, तैसौ फल होय। मयूरकौ मुकरंद पाषाण है तामैं सब मोर भासै, पाषाणओर देखै मोर भासै, पदार्थओर देखै पदार्थही है, मोर नाही। तैसैं परमैं पर भासै, निजओर देखै पर न भासै, निजही है। सुखकारी निजदृष्टि तजि दुःखरूप परदृष्टि न दीजै॥

हे चिदानन्दराम! आपकौं अमर करिकैं अवलोकौ। मरण तुममैं नही। जैसैं कोई चक्ररत्न जिसके घरमैं चौदा रत्न नव निधि अर वह दरिद्री भया फिरै, ताकौं अपनैं चक्रवर्तिपद अवलोकनमात्रतैं चक्रवर्ती आप होय, ऐसैं स्वपदकौं परमेश्वर अवलोकै, तौ तब परमेश्वर है। देखौ देखौ भूल! अवलोकनमात्रतैं परमेश्वर होय। ऐसी अवलोकना न करै, इंद्रियचोरनके वश भया अपने निधान मुसाय (लुटवाय) दरिद्री भया, भवविपत्तिकौं भरै है, भूलि न मेटै है। सो चित्तविकाररूप जीव होय, तब परकौ आपा मानै। ए भाव जीवका निज जातिस्वभाव नाहीं हैं। इन भावनतैं जो

व्यापार सोही चेतना एक तूं जीव निज जातिस्वभाव जानु । यह चेतना है सो केवल जीव है, सो अनादि अनन्त एकरस है, तिसतैं चेतना साक्षात् आप जीव जानना, तिसतैं शुद्धचेतनारूप जीव भये । इन रागादिभावविषैंहू आपनमैं जीव कर्मचेतनारूप होय प्रवर्तैं है । चेतना जीवचेतना चेतनारूप आप तिष्ठै है । कर्मचेतना कर्मफलचेतना विकार जीवचेतनका है । परि व्यापक चेतना है । चेतना जीवविना नाहीं है । चेतना शुद्धजीवका स्वरूप है । ताके जाने ज्ञाता जीवकै ऐसा भाव होय है ॥

अब हम शुद्धचेतनारूप स्वरूप जान्या । ज्ञानदर्शन चारित्ररूप हम हैं, विकाररूप हम नांही, सिद्धसमान हैं, बन्ध मुक्ति आश्रव संवररूप हम नाहीं, हम अब जागे, हमारी नींद गई, हम अपनैं स्वरूपकौं एक अनुभवै हैं, अब हम संसारतैं जुदे भये, स्वरूपगजपरि हम आरूढ भये, स्वरूपगृहविषैं प्रवेश कीया, हम तमासगीर इन संसारपरिणामनके भये । हम अब आप अपने स्वरूपकौं देखै जानै हैं । इतना विचार

तौ विकल्प है। ज्ञानका प्रत्यक्षरस वेदना भावनमैं सो अनुभव है। विचारप्रतीतिरूप साधक है, अनुभव भावसाध्य है। साधकसाध्यभेद जानै तौ वस्तुकी सिद्धि होय। सो कहिये हैं ॥

साध्यसाधक उदाहरण कहिये हैं। एकक्षेत्रावगाही पुद्गलकर्महीका सहजही उदय स्थितिकौं होय है, सो साधक अवस्था जाननी। तहां तवलग तिस हवनेका (?) स्थितिस्यौं चित्तविकार हवनेकी (?) प्रवर्तना पाईये है, सो साध्यभेद जानना ॥ मिथ्यात्व साधक, बहिरात्मा साध्य है। सम्यग्भाव साधक है, तहां वस्तुस्वभाव जातिसिद्ध होना साध्य है। जहां शुद्धोपयोगपरिणति होना साधक है, तहां परमात्मा साध्य है। व्यवहाररत्नत्रय साधक है, तहां निश्चयरत्नत्रय साध्य है। सम्यग्दृष्टिकौं जहां विरति व्यवहारपरिणति हवना साधक है, तहां चारित्रशक्ति मुख्य हवना साध्य है। देव-शास्त्र-गुरु भक्ति विनय नमस्कारादि भाव जहां साधक है, तहां विषयकषायादि भाव-

नसौं उदासीनता मनःपरिणातिकी स्थिरता साध्य है। जहां एक शुभोपयोग व्यवहारपरिणति हवना साधक है, तहां परम्परामोक्ष साध्य है॥

जहां अन्तरात्मारूप जीवद्रव्य साधक है, तहां अभेद आपही जीवद्रव्य परमात्मारूप साध्य है। जहां ज्ञानादिगुण मोक्षमार्गरूपकरि साधक है, तहां अभेद आपही ज्ञानादिगुणका मोक्षरूप साध्य है। जहां जघन्य ज्ञानादिभाव साधक है, तहां अभेद आपही वेही ज्ञानादिगुणका उत्कृष्टभाव साध्य है। जहां ज्ञानादि स्तोक निश्चयपरिणतिकरि साधक है, तहां अभेद आपही बहुत निश्चयपरिणतिरूप ज्ञानादि गुण साध्य हैं। जहां सम्यक्त्वी जीव साधक है, तहां तिस जीवकै सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्र साध्य हैं। जहां गुणमोक्ष साधक है, तहां द्रव्यमोक्ष साध्य है। जहां क्षपकश्रेणी चढना साधक है, तहां तद्भवसाक्षान्मोक्ष साध्य है। जहां द्रव्यतैं भावतैं साक्षात् द्वैतव्यवहार साधक है, तहां साक्षान्मोक्ष साध्य है। जहां भावितमनादिरीतिविलय (?) साधक है,

तहां साक्षात्परमात्मरूप केवल हवना साध्य है। जहां पौद्गलिककर्म खिरणा साधक है, तहां चिद्विकारविलय हवना साध्य है ॥

जहां परमाणुमात्रपरिग्रहप्रपंच साधक है, तहां ममताभाव साध्य है। जहां मिथ्यादृष्टि हवना साधक है, तहां संसारभ्रमण साध्य है। जहां सम्यग्दृष्टि हवना साधक है, तहां मोक्षपद होना साध्य है। जहां काललब्धि साधक है, तहां द्रव्यकौं तैसाही भाव हवना साध्य है। हम स्वभावसाधनकरि अपने स्वरूपकौं साध्य कीया है ॥ यह साध्यसाधकभाव जानि सहजही साध्य सधै है ॥ विशेष इनका कीजिये है। अहं नरः। अहं देवः। अहं नारकः। अहं तिर्यक्। ये शरीर मेरे; परमैं निजभाव परकौं आपा मानना, स्वरूपतैं बाहरि परपदार्थमैं परिणाम तन्मय करना रागभावतैं रंजकताकरि परके स्वरूपकौं आप प्रतीतिकरि जानियै। ऐसा मिथ्यात्व दूजा भेद मिथ्यात्वका। ऐसैं मिथ्यात्वकौं साधै है। सो कहिये हैं ॥

अतत्त्वश्रद्धान मिथ्यादर्शन, अयथार्थज्ञान मिथ्याज्ञान, अयथार्थाचरण मिथ्या आचरण। क्षुधादि अठरा दोष संयुक्त देवकी भक्ति तारणबुद्धितैं मिथ्यात्व होय। काहेतैं? परानुभवी है, मिथ्यालीन है, तिनके सेये मिथ्यात्व होय। ऐसैं दोषसहित गुरु ग्रन्थलीन विषयारूढ परबुद्धिधारककौं मानै मिथ्यात्व, मिथ्याशास्त्र मिथ्यामत मिथ्याधर्म इनकौं मानि मिथ्यात्व सो मिथ्यात्व बहिरात्माका साधक है। अनादिका बहिरात्मा इस मिथ्यासेवनतैं भया है। तातैं बहिरात्मा साध्य है। दूजा सम्यग्भाव साधक है। सो वस्तुका जो स्वभाव अनन्तगुण ताकी सिद्धि करे है। काहेतैं? सब गुण यथाविधि स्वरूप सम्यक् अपने स्वरूपकौं जब धरै, जब सम्यग्भावकौं लीये होय, ज्ञानका निर्विकल्प जानपणा सब आवरणरहित केवलज्ञानरूप सम्यगवस्थारूप, सो सम्यग्ज्ञान कहिये। यौंही आवरणरहित शुद्ध सम्यक्रूप यथावत् निश्चयभावरूप निर्विकल्प सब गुण सम्यक् कहिये ॥

द्रव्य अपने शुद्धत्व जैसा स्वरूप है, तैसैंकौं लीयै। पर्याय जैसा कछु परिणमनरूप स्वभाव है, तैसैंकौं लीयै। ऐसैं द्रव्यगुणपर्यायका स्वभाव जाति सब सिद्ध हवना सम्यग्भावतैं है। तातैं सम्यग्भाव साधक है। वस्तुस्वभाव जातिसिद्ध हवना साध्य है, शुद्धोपयोगपरिणति साधक है। परमात्मा साध्य है, सो कहूंतैं शुद्धोपयोगस्वभावसज्ञतैं होय है। ज्ञानदर्शन तो साधक। तातैं सब रूप शुद्धोपयोग, चारित्ररूप शुद्धोपयोग, सो ज्ञानदर्शन तो साधक, तातैं सब शुद्ध नाहीं। केतेक शक्तिकरि शुद्ध है। चारित्रगुण वारमैंके ठिकाने सब शुद्ध हैं। परि परम यथाख्यात तेरमैं चौदमैंमैं नाव पावै है। तातैं केतेक ज्ञानशक्ति शुद्ध भई। ता ज्ञानशक्तिकरि केवलज्ञानरूप गुण निजरूप ताकौं प्रतीति व्यक्ति करि, तब परिणतिनैं केवलज्ञानकूं प्रतीति रुचि श्रद्धाभावकरि निश्चय कीया। गुणका व्यक्तश्रद्धानतैं व्यक्त होय जाय है॥

एकदेशस्वरूपमें शुद्धत्व सर्वदेशकौं साधै है। शुद्धानिश्चयकरि शुद्धस्वरूप जान्या

परिणतिमैं शुद्धनिश्चय भया। तब वैसाही वेद्या। शुद्धका निश्चय शुद्धपरमात्माकौं कारण है।तातैं शुद्धोपयोग साधक, परमात्मा साध्य है। निश्चय साध्य है सो कैसैं तत्त्वश्रद्धानमैं है। याका हेय श्रद्धान। निजतत्त्वका उपादेय श्रद्धान तत्त्वज्ञानमैं परतत्त्वका रूप हेय जान्या, निजतत्त्व उपादेय जान्या। भवभोगादिविरति कार्यकारी जानी। सम्यक्त्वाचरणरीति उपादेय जानी। ऐसा व्यवहार तत्त्वसौं मिल्या विचार हेय उपादेयांका सम्यग्भेदकौं लीये है। इस व्यवहारकै होतै निजसम्यक्स्वरूपकौं मन इन्द्रिय उपयोग निरोधि शुद्ध अनुभवै। निजश्रद्धान सिद्धसमान स्वरूपका करै। तत्त्व सातका भेल नही। निजशुद्धतत्त्व अनुभवगोचर करै। निश्चयकरि श्रद्धानमैं आपकौं परमात्मा शुद्ध है। निश्चयकरि ज्ञान परमात्माका जानपणा केवलज्ञान जातितैं जानै। स्तोक सम्यग्ज्ञानतैं सब सम्यग्ज्ञानकौं प्रतीतिमैं जानै। स्वसंवेदमैं जातिरूपकरि अपना स्वरूप केवलज्ञानमैं ठीक जान्या। थोरे ज्ञानमैं बहुत ज्ञानकी प्रतीति आई। निश्चयकरि स्वरूप जान्या

सो निश्चयज्ञानपरिणतिकरि स्वरूप आचरना स्वरूपाचरण । परमात्माका श्रद्धानज्ञान निश्चयकरि केतेक ज्ञानादि शुद्धशक्तिकरि भया । तैसेंही आचरण भया ॥

निश्चयनय परमात्मा है । परिणति वैसीही निश्चयरूप परिणई है । ये निश्चयरत्नत्रय प्रथम व्यवहाररत्नत्रय भये होय हैं । तातैं व्यवहाररत्नत्रय साधक, निश्चयरत्नत्रय साध्य है । सम्यग्दृष्टिकै विरति व्यवहारपरिणति साधक है, तहां चारित्रशक्ति मुख्य साध्य है । सो कहिये हैं । विरति परिणति कहिये रति नांही । ताके भेद विषयनमैं रति नांही, कषायमैं रति नांही, अशुभाचरणका त्याग, शुभाचरणमैंहु रति नांही, कर्मकरतूति रति नांही । ज्यौं ज्यौं पररतिभाव तजै, त्यौं त्यौं स्वरूपविषैं थिरता विश्राम और आचरण होय, तहां चारित कहिये । परिणतिशुद्धता प्रगटै चारित्रशक्ति मुख्य साध्य है । देवशास्त्रगुरुभक्ति विनय नमस्कारादि भाव साधक है, तहां विषयादि उदासीनतामैं परिणति स्थिरता साध्य है देवभक्ति परमात्मव्यक्त शुद्ध-

चेतना प्रगट अनन्तगुण प्रगट तिनकी पूजा सेवा मनसौं परिपूर्ण प्रीति बाह्य प्रभावना अन्तरङ्ग ध्यान गुणवर्णन अवज्ञा अभाव परमउत्साह मन वच काय धन सर्व भक्ति-निमित्त लगावै, अपने प्राणहूतैं वल्लभ प्राण दुःखमूल जानै, उनकौं अनन्तसुखकारण जानै, शुद्धस्वरूप जानि भक्ति करै, शुद्धस्वरूप अभिलाषी आप यातैं उनकी भक्ति रुचि श्रद्धा प्रतीतितैं करै, शास्त्रकी भक्ति करै। काहेतैं? अपनौ स्वरूप शास्त्रतैं पावै है। संसारदुःखहानि स्वरूपभावनातैं होय, सो पावै। स्वपरविवेक ग्रन्थतैं प्रगटै। मोक्ष-मार्ग मोक्षस्वरूप वाणीतैं लहै। तातैं शास्त्रभक्ति कही। गुरु मोक्षमार्ग उपदेशै, शान्त-मुद्रा धारी गुरु, मुद्रा विनावचन बोल्याही मोक्षमार्ग दिखावै। ऐसै श्रीगुरु सर्वदोपर-हित तिनकी भक्ति कही। इनकी भक्ति करै, मुक्तिके ये कारण जानि करै। तब भव-भोगसौं उदास होय मन स्वरूपहीकी स्थिरता चाहै, तब साधै। तातैं उनकी भक्ति साधक है, मनकी स्थिरता साध्य है ॥

शुभोपयोगके तीन भेद हैं। क्रियारूप, भक्तिरूप, गुणगुणिभेदविचाररूप। सो सातिशयकौं लीये निरतिशयकौं लीये षड्भेद। ये जो सम्यक्त्वसहित सो सातिशय, सम्यक्त्वविना तीनौ निरतिशय। सम्यक्त्वसहितमैं तौ नियम है, परम्परा मोक्ष करैही करै। विनासम्यक्त्व शुभोपयोग संसारसुख दे, देवपद दे, राजपद दे। तहां देवगुरुशास्त्रकौं निमित्त होय याकै लाभ होनो होय तौ होय, नांही तौ न होय। कारजको कारणविना नियम है, ऐसी रीति जानियौं। याप्रकार शुभोपयोग साधक है, परम्परा-मोक्ष साध्य है ॥

अन्तरात्मा भेदज्ञानकरि परसौं भिन्न निजरूप जानै, सिद्धसमान प्रतीतिज्ञान-गोचर करै, तब साधक है आपही आप, निश्चयनय अभेद परमात्मा साध्य है। जहां ज्ञानादि मोक्षमार्ग कहिये एकदेश स्वसंवेदन शुद्धोपयोगरूप, तहां अभेदज्ञानमूर्ति आत्मा मोक्षस्वरूपकौं साधै, तातैं अभेदज्ञान मोक्षरूप साध्य है। जघन्यज्ञानतैं उत्कृष्ट-

ज्ञान पाईये, तातैं जघन्यज्ञान साधक उत्कृष्टज्ञान साध्य है। जहां ज्ञान स्तोकादि निश्चय करै, तहां वह निश्चय बढै। जैसैं स्तोक अमल है चाहि लीन अमल बहुत बढै, बहुत निश्चयपरिणतिरूप ज्ञानादि गुण बढै, सो साध्य है। सम्यक्त्वी जीव दर्शनज्ञानचारित्रकौं साधै, तातैं सम्यक्त्व ज्ञान दर्शन चारित्र साध्य हैं। सम्यक्त्व साधक है। सम्यक्त्वज्ञानादि भाव शुद्ध होय जब द्रव्यकर्म मिटै, तब द्रव्यमोक्ष होय, तातैं गुणमोक्ष साधक, द्रव्यमोक्ष साध्य है। क्षपकश्रेणी चढै जब तद्भवमोक्ष होय, तातैं क्षपकश्रेणी चढना साधक है, तद्भवमोक्ष साध्य है। दरवितलिंग होय, भावित स्वरूपभाव भाव होय, तब साक्षात् मोक्ष सधै, तातैं दरवित भावित याति व्यवहार साधक है, तहां साक्षान्मोक्ष साध्य है। भावितमनके विकार विलय भये साक्षान्मोक्ष होय तातैं भावित मनादिरीति विलय साधक है, साक्षान्मोक्षरूप साध्य है॥

जहां पौद्गलिक कर्म खिरणा साधक है, काहेतैं? पुद्गलकर्म विपाक आये मनो-

विकार उपजे है, तातैं पुद्गलही खिरि जाय, तब मनोविकार कहांतैं रहे? तातैं मनोविकारविलय हवना साध्य है, कर्म खिरणा साधक है। परमाणुमात्रभी परिग्रह होय तौ ममताभाव होयही होय, तातैं परमाणुमात्र परिग्रह साधक है, ममताभाव साध्य है। मिथ्यात्वतैं संसार भ्रमै, मिथ्यात्व साधक, संसारभ्रमण साध्य है। सम्यक्त्व भये मोक्ष होय, तातैं सम्यक्त्व साधक है, मोक्ष होना साध्य है।जैसी काललब्धि आवै, तैसीही स्वभावसिद्धि होय, तातैं काललब्धि साधक है, तैसाही स्वभाव हवना साध्य है। साधकसाध्यभेद अनेक हैं, सो जाननै ॥

शब्द साधक है, अर्थ साध्य है। अर्थ साधक है, ज्ञानरस साध्य है। स्थिरता साधक है, ध्यान साध्य है। ध्यान साधक है, कर्म क्षरणा साध्य है। कर्म क्षरणा साधक है, द्रव्यमोक्ष साध्य है। राग–द्वेष–मोह अभाव साधक है, संसाराभाव साध्य है। धर्म साधक है, परमपद साध्य है। स्वविचारप्रतीतिरूप साधक है, अनाकुलभाव

साध्य है। समाधि साधक है, निजशुद्धस्वरूप साध्य है। स्याद्वाद साधक है, यथार्थ पदार्थकी साधना साध्य है। भली भावना साधक है, विशुद्धज्ञानकला साध्य है। विशुद्धज्ञानकला साधक है, निजपरमात्मा साध्य है। विवेक साधक है, कार्य साध्य है। धर्मध्यान साधक है, शुक्लध्यान साध्य है। शुक्लध्यान साधक है, मोक्ष साक्षात् साध्य है। वीतरागभाव साधक है, कर्मअबंध साध्य है। संवर साधक है, निर्जरा साध्य है। निर्जरा साधक है, मोक्ष साध्य है। चिद्विकारभाव साधक है, शुद्धोपयोग साध्य है। द्रव्यश्रुत सम्यगवगाहन साधक है, भावश्रुत साध्य है। भावश्रुत साधक है, केवलज्ञान साध्य है। चेतनमैं चित्त लीन करना साधक है, अनुभव साध्य है। अनुभव साधक है, मोक्ष साध्य है। नयभङ्गी साधक है, प्रमाणभङ्गी साध्य है। प्रमाणभङ्गी साधक है, वस्तुसिद्धि करना साध्य है। शास्त्र सम्यक् अवगाहन साधक है, श्रद्धागुणज्ञता साध्य है। श्रद्धागुण साधक है,

परमार्थ पावना साध्य है। यतिजनसेवा साधक है, आत्महित साध्य है। विनय साधक है, विद्यालाभ साध्य है। तत्त्वश्रद्धान साधक है, निश्चयसम्यक्त्व साध्य है। देवशास्त्रगुरुकी प्रतीति साधक है, तत्त्व पावना साध्य है। तत्त्वामृत पीवना साधक है, संसारखेद मेटना साध्य है। मोक्षमार्ग साधक है, संसारखेद मेटना साध्य है।

मोक्षमार्ग साधक है, मोक्ष साध्य है। ध्यान साधक है, मनोविकारविलय साध्य है। ध्यानाभ्यास साधक है, ध्यानसिद्धि साध्य है। सूत्रतात्पर्य साधक है, शास्त्रतात्पर्य साध्य है। नियम साधक है, निश्चयपद पावना साध्य है। नयप्रमाणनिक्षेप साधक है, न्यायस्थापना साध्य है। सम्यक्प्रकार हेय उपादेय जानना साधक है, निर्विकल्प निजरस पीवना साध्य है। परवस्तुविरक्तता साधक है, निजवस्तुप्राप्ति साध्य है। परदया साधक है, व्यवहारधर्म साध्य है। स्वदया साधक है, निजधर्म साध्य है। संवेगादि आठ गुण साधक हैं, सम्यक्त्व साध्य है। चेतनभावना साधक है, सहजसुख साध्य है।

प्राणायाम साधक है, मनोवशीकरण साध्य है। धारणा साधक है, ध्यान साध्य है। ध्यान साधक है, समाधि साध्य है। आत्मरुचि साधक है, अखण्डसुख साध्य है। नय साधक है, अनेकान्त साध्य है। प्रमाण साधक है, वस्तु प्रसिद्ध करना साध्य है। वस्तुग्रहण साधक है, सकलकार्यसामर्थ्य साध्य है। परपरिणति साधक है, भवदुःख साध्य है। निजपरिणति साधक है, स्वरूपानन्द साध्य है। ऐसैं साधकसाध्य हैं। अनेक भेद जानि निज अनुभव करिये। ये सब स्वरूप आनन्द पायवेकौ बताये हैं। कर्मकल्पना कल्पित है। आत्मा सहज अनादिसिद्ध है। अनन्तसुखरूप है। अनन्त गुणमहिमाकौं धरै है। वीतरागभावना भावनतैं शुद्ध उपयोग धारि स्वरूपसमाधिमें लीन होय स्वसंवेदन ज्ञान परिणतिकरि परमात्मा प्रगट कीजे ॥

कोई जानैगा, आजिके समयमैं स्वरूप कठिन है, तिसनैं स्वरूप चाहि मेटि बहिरात्मा है, आजिसौं अधिक परिग्रह चतुर्थकाल पुण्यवंत नर चक्रवर्ती आदिक

तिनकै था, सो इसकै तौ थोरा है, सो परिग्रह जोरावरी इसके परिणामनमैं न आवे है। यौंही दौरि दौरि परिग्रहमैं धुकै है। जब ठालो होय, तब विकथा करै। तब स्वरूपके परिणाम करै, तौ कौन रोकै? परपरिणाम सुगम, निजपरिणाम विषम बतावे है। देखौ अचिरजकी बात, देखै है जानै है देख्यौ न जाय जान्यौ न जाय। ऐसैं कहत लाजहू न आवै। संसारचातुरीकौं चतुर आप जानिवेकौ शठ ऐसौ हठ धिठौहीसौं पकरि पकरि पररत विसनकौं गाढौ भयौ। स्वभावशुद्धि विसारी भारी भव बांधि अंध धंधमैं धायौ न लखायौ। आप अब श्रीगुरुप्रतापतैं संतसंग मिलाप, जातैं मिटै भवताप, आप आपहीमैं पावै, ज्ञान लक्षण लखावै, आप चिंतन धरावै, निजपरिणति बढावै, निजमांहि लवलावै, सहजस्वरसकौं पावै, कर्मबन्धन मिटावै, भाव आपमैं लगावै, वर चिद्गुणपर्यायकौं ध्यावै, तब हर्ष उपावै, मन विश्राम आवै, रसास्वादकौं जु पावै, निज अनुभव कहावै, ताकौं दूरिकौ बतावै, भवभावरी घटावै, आप अलख लखावै,

चिदानन्द दरसावै, अविनाशी रस पावै, जाको जस भव्य गावै, जाकी महिमा अपार जानैं मिटै भवभार महा, ऐसौ समयसार अविकार जानि लीजिये ॥

जीजिये सदैव कीजिये, सोही वोही द्रोही न होय, आप अवलोय, शुद्ध उपयोग थाय, परको वियोग भाय, सहज लखाय, जिन आगममें कही वात, तिहु लोकनाथ व्है, विख्यात निजअनुराग सेती धरि, वीतरागभाव यह दाव पायो, फिरि मिलै न उपाय, ऐसो भाव धरि, जातैं मिटै भवफंद, तातैं मानथंभ मेटि मायाजलकौं जलाई। क्रोध अग्नि बुझाइ, लोभलहरि मिटाइ, विषयभावना न भाइ, चिदानन्दरायपद देखौ देखौ। निज आपकौ गवेषौ, परवेदनाकी उच्छेदना करि सहजभाव धरि अंतवेंदी होय, आनन्दधाराकौं देखि, परमात्मनिश्चयरूप देखि, इस परपरिणतिनारीसौं ललचाये ॥

कुमतिसखी संगि गतिमैं डालै, निजपरिणति राणीके वियोगतैं वहुदुःखी भये।

अब निजपरिणतियासौं अतीन्द्रिय भोग भोगवो, जहां सहज अविनाशीरस वर्षे है। अरूपीकमैं पद्मराग मणि कलिप आनन्द झूठेही मानौ हौं। ऐसैं परमैं निजभाव कल्पा सो झूठैही हौस पूरी करो, सो न होय। आकाशमैं देव एक, ताके करमें चिंतामणि, ताको प्रतिबिम्ब अपने वासनके जलमैं देख्यौ, मनमें विचारि मेरै चिन्तामणि है, ताके भरोसौ बिराने लाखौ देने कीये तौ कहा सिद्धि है? झूठ कल्पना तुमहीको दुखदाई है। साचौ चिन्तामणि घरमैं ताकौ न देखौ! अरु प्रतिबिम्बमैं हाथि न परै। बहुत खेद करो, सो कहा बढाई? अब अपनो साचो अखंड पद देखो। ब्रह्मसरोवर आनन्द-सुधारसकरि पूर्ण, जाको सुधारस पीवत अमर होय, सो रस पीवनो॥

॥ अथ अनुभववर्णनम् ॥

पौद्गलिककर्महीकरि पांच इंद्रिय छठे मनरूप बन्या सञ्ज्ञी देह, तिस देहविषैं तिस-प्रमाण तिष्ठया जु है जीवद्रव्यभी इंद्रिय मन सञ्ज्ञा नाम पावै। भावइन्द्रिय भावमन

छह प्रकार उपयोगपरिणामभी भेद पड्या है। एकएक उपयोगपरिणाम एककौं देखै जानै। मन उपयोग परिणाम चिन्ता विकल्प देखै जानै। परिणाम विचार विकल्प चिंतारूप मानना होय। तिस होनैं सो तिस परिणामभेदकौं मन नाम कह्या देखि संत अवर अब इनहकौं एक ज्ञानका नाम लेइ कथन करूं हौं। तिस ज्ञानकथनैंकरि दरसनादि सब गुण आगया। इन मन इंद्रियभेदहके ज्ञानकी पर्यायका नाम मतिसञ्ज्ञा कहिये। मिश्र भेदज्ञानकरि अर्थस्यौं अर्थान्तरविशेष जानै, इस जाननेकौ श्रुतसञ्ज्ञा कहिये। दोन्यों ज्ञानपर्याय कुरूप सम्यग्रूप कहिये। मिथ्यातीकौं जाननमैं कुरूपता पौद्गलिक कर्मकरि पांचइन्द्रिय छठे मनरूप बन्या संज्ञी देह। तिस देहविषैं तिसप्रमाण तिष्ठया जु है जीवद्रव्यभी इन्द्रिय मन संज्ञा नाम पावै। भावइन्द्री भावमन छहप्रकार उपयोगपरिणामभी भेद पड्या है, एकएक उपयोग परिणाम एकएककौं देखै जानैं मन-उपयोग परिणाम चिन्ताविकल्प देखै जानैं परिणामविचार विकल्पचिंतारूप मानना

होय, तिस होनेसों तिस परिणामभेदकौं मन नाम कह्या । देखि संत (?) अवरु इनहिकौं एकज्ञानका नाम लेइ कथन करूं हौं, तिस ज्ञानकथनैंकरि दर्शनादि सबगुण आय गए । इन मनइन्द्रीभेदके ज्ञानकी पर्यायका नाम मतिसंज्ञा कहिये मिश्रभेदज्ञानकरि अर्थस्यौं अर्थान्तर विशेष जानै तिस जाननैंकौं श्रुतसंज्ञा कहिये । दोन्यों ज्ञानपर्याय कुरूप सम्यग्रूप कहिये मिथ्यातीकैं मतिश्रुतरूप जानना है, तिस जाननै विषैं स्व–परव्यापक अव्यापककी जाति नाहीं । तिस ज्ञेयकौं आप लखै अथवा लखताही नाहीं । मिथ्यातीकैं जाननमैं कुरूपता है । सम्यग्दृष्टि परकौं जानै हैं । स्वकौं स्व जानै है । चारित्रमैं परकौं निजरूप अवलंबै है मिथ्याती । सम्यग्दृष्टि निजकौं निज अवलंबै है । सम्यक्ता सविकल्प निर्विकल्परूपसौं दोय प्रकार है । जघन्यज्ञानीकैं जब तिस परज्ञेयकौं अव्यापकपररूपत्व जानि आपकौं जाननरूप व्यापक जानै सो तो सविकल्पसम्यक्ता । अवरु जु आप जाननरूप आपकौंही व्याप्यव्यापक जान्या करै सो निर्वि-

कल्परूप सम्यक्ता । अवरु जो एकबेर एकसमय विषैं स्वकौं सर्व स्वकरि लखै, सर्वपरकौं परकरि लखै तहां चारित्र परमशुद्ध है ॥

तिस सम्यक्तताकौं परम सर्वथा सम्यकात्म कहिये केवल दर्शनज्ञानपर्यायविषैं पाइये । अवरु जिस ज्ञेयप्रति प्रयुंजे तिसहीकौं जानै औरकौ न जानैं । मिथ्यातीकैं वा सम्यक्दृष्टिकैं ज्ञेयप्रयोजना ज्ञान तो एकसा है, परंतु भेद इतना ही, मिथ्याती जेता जानै तेता अयथार्थरूप साधै । सम्यग्दृष्टि तिसही भावकौं जानैं तितनैंही यथार्थरूप साधै । तातैं तिस सम्यग्दृष्टिकैं चारित्र अशुद्ध परिणामनसौं बंध होय सकता नाहीं । तिन उपयोग परणामौंनैं बंध आस्रव तिन अशुद्ध परिणामनकी शक्ति कीलि राखी है । तातैं निरास्रव निरबंध है । अरु सब एक आपहीकौं आप चित्तवस्तु व्यापक व्याप्यताकरि प्रत्यक्ष आपही देखन लगैं जानन लगैं, अरु ते चारित्रपरिणाम निज उपयोगमय चित्तवस्तुविषैं थिरीभूत शुद्ध वीतराग मग्नरूप प्रवर्तैं । तिनही चारित्र परि-

णामजन्य निजारथ होय है। यौंकरि सम्यग्दृष्टिकैं ज्ञानदर्शनचारित्रसहित परिणाम निजचित्तवस्तुहीकौं व्याप्यव्यापकरूप देखतैं जानतैं आचरतैं निजास्वाद लेय निजस्वाददशाका नाम स्वानुभव कहिये ॥

स्वानुभव होतैं निर्विकल्प सम्यक्ता उपजै। स्वानुभवकौं कहौ वा कोई निर्विकल्पदशा कहौ, वा आत्मसन्मुख उपयोग कहौ, वा भावमति भावश्रुत कहौ, वा स्वसंवेदनभाववस्तुमगन भाव वा स्वआचरण कहौ, थिरता कहौ, विश्राम कहौ, स्वसुख कहौ, इन्द्रीमनातीत भाव, शुद्धोपयोगस्वरूप मग्न वा निश्चयभाव, स्वरससाम्यभाव, समाधिभाव, वीतरागभाव, अद्वैतावलंबीभाव, चित्तानिरोधभाव, निजधर्मभाव, यथास्वादरूप यौंकरि स्वानुभवके बहुत नाम हैं। तथापि एक स्वस्वादरूप अनुभवदशा मुख्यनाम जानना। जो सम्यग्दृष्टि चउथेका है। तिसकैं तो स्वानुभवका काल लघु अंतर्मुहूर्ततांई रहै है। वह काल पीछै होइ है। तिसतैं देशव्रतीका स्वानुभव

रहनेका काल बडा है। अरु थोरे ही काल पीछें होइ है। सर्वविरतिकै स्वानुभव दीर्घ अन्तर्मुहूर्ततांई होइ है। ध्यानस्यौं भी होइ है। अति थोरे थोरे कालपीछे स्वानुभव हुवा ही करै, वारंवार अवरु सातमैं। तेई परिणाम पूर्वस्वानुभवरूप भए थे तेतौ स्वानुभवरूप रहै, पै तहांसौं मुख्यरूप कर्मधारासौं विकसि निकसि स्वरसस्वाद अनुभवरूप होते हैं ते चले। ज्यौं ज्यौं आगूंका (पहिलेका) काल आवै है त्यौं त्यौं अवरु अवरु परिणाम स्वस्वादरस अनुभवरूप होई करि वढते चलैं हैं। यौंकरि तहांसौं अनुभवदशाकी परिणाम बढनि करि पलटनि होइ है। क्षीणमोह अन्तलगु जाननी ॥

भो भव्य! तू एक बात सुनि—हम एक अवरु कहैं हैं। यह स्वानुभवदशा स्वसमयरूप सुख है, शान्ति विश्राम है, स्थिररूप है, निजकल्याण है, चैन है, तृप्तिरूप है, समभाव है, मुख्य मोक्षराह है, ऐसा है। अरु यहु सम्यक् सविकल्पदशा यद्यपि उपयोग निरमल है तथापि यहां चारित्त परिणाम परालंब अशुद्ध चंचल होतैं संतै सवि-

कल्पदशा दुःख है। तृष्णातप्तकरि चंचल है। पुण्यपापरूप कलाय है। उद्वेगता है। असंतोषरूप है। ऐसैं ऐसैं विलापरूप है। चारित्र परिणाम दोन्योंतैं अवस्था आपविषैं देखी है। तिसतैं भला यह ज्ञु तू स्वानुभवरूप रहनेका उद्यम राख्या करु। यह हमारा वचन व्यवहारकरि उपदेशकथन है। जेती जेती विशुद्धता थिरता गुणस्थान माफिक बढी तेता तेता सुख बढ्या। बारमैंलगु कषाय घटनेतैं थिरता बढी। मतिज्ञानावरण श्रुतज्ञानावरणके क्षयोपशमतैं स्वसंवेदन रस बढ्यौ। स्वसंवेदन थिरता करि उपज्यौ रसास्वाद स्वानुभव सो अनन्तसुख मूल है॥

सो अनुभव धाराधरजगै दुःख दावानल रंच न रहतु है। स्वानुभव भववासघटा भानवेकौं परम प्रचण्ड पवन मुनिजन कहतु है। अनुभव सुधापानकरि भव्य अमर अनेक भए। परमपूज्यपदकौं अनुभवही करै है। सब वेदपुराण याविनु निरर्थक है। स्मृति विस्मृति है। शास्त्रार्थ व्यर्थ है। पूजा मोहभजन है। अनुभवविना निर्विं-

ध्नकार्य विघ्न है। परमेश्वरकथा सोभी झूंठी है। तपभी झूंठ है। तीर्थसेवन झूंठ है॥

तर्क पुराण व्याकरण खेद है। अनुभवविना ग्रामविषैं गाय श्वान, वनमैं हिरणादिज्यौं अज्ञानतपसी। अनुभवप्रसादतैं नर कहूं रहौ सदा पूज्य है। अनुभव आनंद, अनुभव धर्म, अनुभव परमपद, अनुभव अनन्तगुणरससागर, अनुभवतैं सिद्ध है अनुपज्योति अमिततेज अखण्ड अचल अमल अतुल अबाधित अरूप अजर अमर अविनाशी अलख अछेद अभेद अक्रिय अमूर्तिक अकर्तृत्व अभोक्तृत्व अविगत आनंदमय चिदानंद इत्यादि अनंत परमेश्वरका विशेषण सर्व अनुभवसिद्धि करतु है। तातैं अनुभव सार है। मोक्षको निदान सब विधानको शिरोमणि, सुखको निधान अमलान अनुभव है। अनुभवी जीव मुनिजनके चरणारविंद इन्द्रादि सेवैं हैं। तातैं अनुभवकरि ये ग्रन्थ ग्रन्थनमैं अनुभवकी प्रशंसा कही है। अनुभवविना साध्यसिद्धि कहूं नाहीं। अनन्तचेतनाचिन्हरूप अनंतगुणमंडित, अनंतशक्तिधारक, आतम-

पदको रसास्वाद अनुभव कहिये।

वारंवार सर्व ग्रन्थको सार अविकार अनुभव है। अनुभव शासतौ चिन्तामणि है। अनुभव अविनाशी रसकूप है। मोक्षरूप अनुभव है। तत्त्वार्थसार अनुभव है। जगत उधारण अनुभव है। अनुभवतैं आन कोई उच्चपद नाहीं। तातैं अनुभव सदा स्वरूपकौ करिये। अनुभवकी महिमा अनंत है कहांलौ बताइये। आठकर्मप्रदेश परि आपणी थितिकरि बैठे सर्व पुद्गलका ठार है। तिनके विपाकके उदयकरि चिदविकार भया सो विकार जीवका है। वर्गणा नोकर्म द्रव्यकर्मरूप सब पुद्गल हैं। भावजीवके हैं। एकसो अठतालीस प्रकृति वर्गणा जड वणी है। उनके विपाक उदय व्यक्तता निमित्त पाय चिदविकारभया, सो विकारका स्वांग जीवनैं धर्‍या है। इस ज्ञेय रंजक अशुद्धता भाव उस शुद्धभावकी शक्ति अशुद्ध भई तब भया है। अशुद्धपरनिमित्ततैं उपदू? मैल है। पर इसनैं कीया तातैं इसका है। इसका मूलभाव नाहीं, काहेतैं बादरकी

घटा लाल श्याम पीत हरितरूप भये आकाश वैसा न भया। जैसें रतनपरि मांटी बहुत लपटी परि रतनका प्रकाश मांटीके लपटें न गया। अंतरशक्ति ज्यौंकी त्यौं है। त्यौं आतमाके अशुद्धभाव भयें आतमाका दरसन ज्ञानकी अंतर ज्यौंकी त्यौं है। पर पुद्गलका नाट बहुत बन्या है। सो पुद्गलका खेल जानु, तेरा आतमा खेल मति जानै ॥

कहिये हैं दशधा परिग्रह क्षेत्र, वाग, नगर, कूप, वापी, तडाग, नदी आदि जेतेक पुद्गल माता पिता कलत्र पुत्र पुत्री वधू वंधू स्वजनादि जावंत सर्प सिंह व्याघ्र गज महिषादि जावंत दुष्ट अक्षर शब्द अनक्षर शद्बादि वाग गव्यग स्नान भोग संजोग वियोग क्रिया जावंत परिग्रह मिलाप सो वडा परिग्रह नाश सो दलिद्रादि क्रिया जावंत चलना बैठना हलना बोलना कांपनादि क्रिया जावंत लडना भिडना चढना उतरना वाचना खेलना गावना बजावना आदि जावंत क्रिया सर्व पुद्गलका खेल जानु।

नर नारक तिर्यंञ्च देव इनके विभव भोगकरण विषयरूप इन्द्रियनिकी क्रियादि सब पुद्गल नाट है। द्रव्यकर्म नोकर्मादि सब पुद्गल अखारा है। तामैं तूं चिदानंद रंजन होय है। अपनी जानै है। अपनें दर्शनज्ञानचारित्रादि अनंत अखारा गुणका परिणति पातरा नाचैं स्वरूपरस उपजावैं जेते गुणकौं वेदैं द्रव्य वेदैं सब भाव भये सत्ता मृदंग प्रमेय ताल इत्यादि सब निज अखारा है। ऐसे अपने निज अखारेमैं रंजि, परके अखारेमैंतैं ममत्व कीया जिसका जन्मादि दुःखफल अपनां माया अपनें सहजास्वादी होय परप्रेम मिटाय अचेतना प्रकाशका विलासरूप अतीन्द्रियभोग भोगि कहा झुठे ही सुनैं जडमैं आपा मानै है। अर परकौं कहै– हमकौं दुःख यह दे है। यामैं शक्ति दुःख देनेकी नाहीं। विरानै सिर झूंठा उलाहना दे है अपनी हरामजादगीकौं न देखै है। अचेतनकौं नचावत फिरत है, सो लाशहु न आवत है। मडेसौं सगाई करि अब हम इससौं ब्याह करि संबंध करैगे सो ऐसी वात लोकमैंहूं निंद्य है। तुम तौ

अनंतज्ञानके धारी चिदानंद है । अनादि झूंठी विडंबना जडसौं आपा माननैंकी मेटौं। तुम एक परमानि छांडौ । पराचरणहीतैं तुमारा दर्शन ज्ञानमैं लाभ भया है । देखनें जाननेतैं जो बंध, तातो सिद्ध लोकालोककौं देखत है, जानते हैं तेहू बंधते तिसतैं परिणाम तादात्म्य नाहीं । तातैं सिद्धभगवान न बंधे हैं । परिणामही, संसार परिणाम ही मोक्ष मानि परिणामकै है रागद्वेष मोह परिणाम करै । इनका जतनहूं परणाम करै ज्ञानदर्शनमैं रागदोष नहीं, वै देखवे जानवे मात्र है । इसकी विकारतातैं वैहू विकारी कहावे । देखना जानना राग द्वेष मोह करि होय तो बंधै, राग द्वेष मोह न होय तो न बंधै । इस परिणाम शुद्धता अभव्यकैं न होय तातैं ज्ञानदर्शन शुद्ध न होय । भव्यकैं परिणाम स्वरूपाचरणके होय तातैं ज्ञानदर्श शुद्ध होय । उक्तं च पद्मनन्दि-पचीसीमध्ये,—

"स्वानुष्ठानविशुद्धे दृग्बोधे जायते कुतो जन्म ॥

उदिते गभस्तिमालिनि किं न विनश्यति तमो नैश्यम् || १ ||

कोई प्रश्न करै—वस्तु देखिये नाहीं जानिये नाहीं परिणाम वामैं कैसैं दीजिये? ताको समाधान— पर दीखता है जानिये है सो परका देखनेवाला उपयोग है तौ देखै है, ज्ञान है तो जानै है। उपयोग तौ ठावा (?) भया नास्तिरूप हुवा, जो यह उपयोगे गहस्यां तिसहीमैं परिणाम धरि थिरता धरि आचरण करि विश्राम गहूं। येताही परिणाम शुद्ध करनेका काम है। उक्तं च– "उववोगमउं जीवो" इतिवचनात् जातैं परिणाम वस्तु वेद्यस्वरूपलाभ ले, वस्तुमैं लीन होय है। स्वरूपनिवास परिणाम ही करै हैं। उत्पाद व्यय ध्रुव परिणाममैं आया, उत्पादव्ययध्रुवमैं सत् भया। सत् तामैं स्वरूप सब आया, तातैं परिणामशुद्धतामैं सब शुद्धता आई || उक्तं च—

जीवो परिणामयदा सुहेण असुहेण चासुहो असुहो।
सुद्धेण तदा सुद्धो परिणामो होदि सब्भावो ||

परिणाम सर्व स्वस्वरूपका है। पराचरण दोय भेद है–द्रव्यपराचरण–भावपराचरण, नोकर्म उपचार पराचरण है, परंपराकरि अनादि उपचार है ॥ वा देहका धारण सादि उपचार है। द्रव्यकर्मजोग अनादि उपचार है। भावकर्म अशुद्धनिश्चयनयकरि है। द्रव्यकर्मनोकर्मका द्रव्यपराचरण उपचारतैं है। भावपराचरण रागद्वेषमोह है तिसका आचरण है। कोई प्रश्न करै– जु रागादि जीवके भाव हैं परभाव सपरसादि हैं। रागादिककौं परभाव क्यों कहे? ताका समाधान– शुद्धनिश्चयनय रागादि जीवके नहीं, येभी पर हैं, काहेतैं भावकर्म ये हैं इनके नाशतैं मुक्ति है। पर हैं तौ छुटै हैं। तातैं परही कहिये। जब यह रागादिकौं अपनैं न मानेगा भवबंधपद्धति मिटैगी। तिसतैं पररागादि तजि शुद्ध दर्शन ज्ञान चारित हैं। आप जानि ग्रहै यह मुक्तीका मूल है। परिणाम जींघे कौंधुके जैसा हैं। तातैं परवोर छोडि स्वरूपमैं लगाय निज परिणाम हैं। उत्पादव्ययध्रुव षट्गुणी वृद्धि हानि अर्थक्रियाकारक परिणामतैं सधै हैं ॥

॥ आगैं देवाधिकार लिखिये हैं ॥

काहैतैं देवतैं परममंगलरूप निजानुभव पाईये हैं। तातैं देव उपकारी हैं। देव परमात्मा है। अरहंत परमात्मा साकार है। शरीरयुक्त हैं। तातैं सिद्ध निराकार हैं। किंचून चरमशरीरतैं आकार तातैं साकार भी कहिये हैं। अरहंतकै अघातिकर्म रहे तातैं बाह्य विवक्षामैं च्यारि गुण व्यक्त न भये। ज्ञानमैं सब व्यक्त भये। सो कहिये हैं। नामकर्म मनुष्य गतिरूप है। तातैं सूक्ष्म बाह्य नहीं। केवलज्ञानमैं व्यक्त है। वेदनी है तातैं बाह्य अबाधित नहीं। अंतरमैं ज्ञानमैं व्यक्त है। अवगाह बाह्य नहीं। आपतैं ज्ञानमैं व्यक्त है। अगुरुलघुगोत्रतैं बाह्य व्यक्त नहीं, ज्ञानमैं है। यह अघातिहूतैं व्यक्त नाव न पाया। नामस्थापनाद्रव्यभाव पूज्य हैं अरहंतके नाम लेतही परमपदकी प्राप्ति होई ॥ उक्तं च—

जिन सुमरो जिन चिंतवो जिन ध्यावो सुमनेन ॥

जिन ध्यायंतहि परमपय लहै इक क्षणेन ॥ १ ॥

जिनथापनातैं सालंबध्यानकरि निरालंबपद पावै है। कैसी है थापना ॥ उक्तं च

किं ब्रह्मैकमयी किमुत्सवमयी श्रेयोमयी किं किमु ।
ज्ञानानन्दमयी किमुन्नतमयी किं सर्वशोभामयी ॥
इत्थं किं किमिति प्रकल्पनपरैस्त्वन्मूर्तिरुद्वीक्ष्यता ।
किं सर्वातिगमेव दर्शयति स ध्यानप्रसादान्महः ॥ १ ॥
मोहोद्दामदवानलप्रशमने पाथोदवृष्टिसमः ।
स्रोतोनिर्झरणीसमीहतविधौ कल्पेन्द्रवल्ली सताम् ॥
संसारप्रबलान्धकारमथने मार्तण्डचण्डद्युति- ।
जैंनी मूर्तिरुपास्यतां शिवसुखे भव्यः पिपासास्ति चेत् ॥

स्वसंवेदनरूप वीतरागमुद्रा देखि स्वसंवेदभावरूप अपना स्वरूप विचारै- पूर्व

ये सराग थे, राग मेटि वीतराग भये। अब मैं सराग हौं। इनकीज्यौं राग मेटौं तौ वीतराग मेरा पद मैं पावौं। निश्चयमैं हूं वीतराग हौं॥ उक्तं च---

"पिच्छहु अरहो देवो पच्छरघडियो हु दरसय मग्गं" इतिवचनात्॥ इस स्थापनाके निमित्ततैं तिहुंकाल तिहुंलोकमैं भव्यजीव धरम साधै हैं। तातैं स्थापना परम पूज्य है। द्रव्यजिन द्रव्यजीव सोहू भाव पूज्य हैं। तातैं पूज्य भावि नय। अथवा तीन कल्याण तक द्रव्याजिन हैं। सो पूज्य हैं। भावाजिन समवसरणमण्डित अनंतचतुष्टय युक्त भव्यनकौं त्यारै। दिव्यध्वनितैं उपदेश देयकरि साक्षात मोक्षमार्ग वर्षा करै परमातमा भावाजिन कहिये॥ आगैं सिद्धदेवका वर्णन कीजिये हैं॥ सिद्ध निराकार परमातमा है। अनंतगुणरूप भये अपने अनंतसुखकौं गुणनिकरि पर्यायतैं वेदि, द्रव्यगुणकौं अरु भोगवै हैं। लोकशिखर परि तिष्ठै हैं। षड्गुणी वृद्धि हानि अर्थ पर्याय किंचून चरमदेहतैं प्रदेशानिकी आकृति आकार व्यंजनपर्याय॥ उक्तं च---

मय नग योग लि मूसिमैं जार स अंबर होय ।
पुरुषाकारैं ज्ञानमय वस्तु प्रमानौं सोय ॥
देवकौं जानै तब स्वरूप अनुभव होय है । इति देवाधिकार ।

|| अथ ज्ञानाधिकारः ||

ज्ञान लोकालोक सकलज्ञेयकौं जानैं निश्चय जाननरूप स्वरूप है ऐसी ज्ञानकी शक्ति है। संसार अवस्थामैं अज्ञानरूप भई है। तौऊ निश्चय निज शक्ति न जाय है। बादरघटाके आवरणतैं सूर्यतेज न जाय, त्यौं ज्ञानावरणतैं ज्ञान न जाय आवरया जाय नाश न होय। ज्ञान सब गुणमैं बडा गुण है। इसमैं अनंतगुण व्यक्त जानैं ॥ ज्ञानविना ज्ञेय न जान्या पर्या। ज्ञेयविना जानवा योग्य कछु भी न होता यातैं ज्ञान प्रधान है। अनंतगुणात्मवस्तु तौऊ ज्ञानमात्र ही है। आचार्य बहु ग्रन्थनमैं आतमा ऐसौ कह्यौ। काहैतैं "लक्षणप्रसिद्ध्या लक्ष्यप्रसिद्ध्यर्थम्" जैसैं

मन्दिर श्वेत कहिये मन्दिर श्वेतादि बहुगुण धरै हैं। तथापि दूरितैं श्वेतगुणकरि भासै तातैं मुख्यतातैं श्वेत मन्दिर कहिये। प्रसिद्ध लक्षण आतमामैं ज्ञान है, तातैं ज्ञानमात्र आतमा कह्यौ। एक एक गुणकी अनंत शक्ति अनंतपर्याय गुणकी एक अनेक भेदादि सब जानै, ज्ञानविना वस्तुसर्वस्व निर्णयरूप स्वरूपकूं न जानैं, तातैं ज्ञान प्रधान है। मतिज्ञानादि ज्ञानके पर्याय हैं। सो क्षयोपशम ज्ञान अंश भेद शुद्ध भये। तातैं पर्याय लोकालोक जानैं ज्ञेयाकार ज्ञानपर्यायकरि है। ज्ञेय नाश होत परि ज्ञाननाश नाहीं तातैं जेतौ ज्ञेय तेतौ ज्ञान मेचक उपयोगलक्षण ज्ञान उपचारतैं ज्ञानमैं ज्ञेय है। तातैं वस्तुस्वरूपमैं ज्ञेयकै विनाशता, ज्ञानविनाश नाहीं ॥

कोई तर्क करै— ज्ञानमैं सकलज्ञेय उपचारतैं हैं। तौ सर्वज्ञपद उपचरित भयो उपचार झूंठ है। तो कहा सर्वज्ञपद झूंठ भयो? ताको समाधान—जाकै उपचारहीमात्रमैं लोकालोक भास्यौ तौ वाकै निश्चयज्ञानकी महिमा कौंन कहै? यह ज्ञान

स्वसंवेदनही भया सबकौं जानै, आपके जानें परका जानना थपै, स्वका जानना थपै है। परकी उपेक्षा आप है आपकी उपेक्षा पर है। विवक्षातैं वस्तुसिद्धि है, ज्ञानतैं स्वरूपानुभव है। यह अज्ञेयाधिकार लिखिये। "ज्ञातुं योग्यं ज्ञेयं" ज्ञेय जानवेयोग्य पदार्थकौं कहिये। सो पदार्थकी तीन अवस्था हैं। द्रव्य अवस्था—गुणअवस्था—पर्यायअवस्था॥ द्रव्यअवस्था मुख्य है। काहेतैं? पदार्थ द्रव्यअवस्था न धरै तौ द्रव्यविना गुणपर्यायका व्यापना न होय, तब द्रव्य न होय, तब पदार्थ न होय, तातैं द्रव्यअवस्था मुख्य है। पीछैं गुणअवस्था है। काहेतैं? गुणविना द्रव्य न होय। तातैं "गुणसमुदायो द्रव्यं" ऐसा जिनवचन है। पर्यायअवस्था न होय तौ वस्तुकौं परणावै कुन?। उत्पाद व्यय ध्रुव न सधै, षड्गुणी वृद्धिहानि न होय, तब अर्थपर्यायका अभाव भये, वस्तु अभाव होय, तातैं पर्यायअवस्थातैं सर्वसिद्धि है॥

द्रव्य गुणपर्यायकौं व्यापै, गुण द्रव्यपर्यायकौं व्यापै, पर्याय गुणद्रव्यकौं व्यापै, तीनौं अवस्था पदार्थकी है। पदार्थ सत्वअवस्थाकरि अस्ति है, परचतुष्टय अवस्थातैं नास्ति है, गुणअवस्थातैं अनेक है, वस्तुअवस्थातैं एक है, गुणादिभेदकरि भेदरूप है, अभेदवस्तुस्वरूपकरि अभेद है, द्रव्यकरि नित्य है, पर्यायकरि अनित्य है, शुद्धनिश्चयतैं शुद्ध है, सामान्यविशेषरूप वस्तुरूप है, वस्तुत्व है, द्रव्यके भावकौं धरै द्रव्यत्व है, प्रमेयके भावकौं धारै प्रमेयरूप है, अगुरुलघुके भावकौं धरै अगुरुलघु अवस्था है, प्रदेशकौं धरैं प्रदेशरूप है, अन्यत्वगुणलक्षणभेद अन्यकरि अन्यत्व है, स्वपरकरि अन्य है, नानापदार्थतैं अन्य है, द्रव्यत्व है, पर्यायत्व है, सर्वगत अप्रदेशत्व है, मूर्त है, अमूर्त है, सक्रिय अक्रिय चेतन अचेतन कर्तृत्व अकर्तृत्व भोक्तृत्व अभोक्तृत्व नाम उपलक्षण क्षेत्र स्थिति संथान सरूप फल द्रव्य क्षेत्र काल भाव संज्ञा संख्या लक्षण प्रयोजन तत्स्वभाव अतत्स्वभाव सप्तभंगरूप अन्योन्यगुणकरि सिद्धिगतहेतुत्व स्थितिहेतुत्व

अवगाहहेतुत्व वर्तनाहेतुत्व चेतनत्व मूर्तत्व विशेषगुण पदार्थ सामान्यविशेष स्वभाव धरे हैं। नानापदार्थ,,एकपदार्थकरि जैसी विवक्षा होय तैसी समझि लेणी ॥

पदार्थ सत्तारूप है। सत्ता– महासत्ता अवान्तरसत्ता दोय भेद लीया छे। सत्वं असत्वं त्रिलक्षणं अविलक्षणं एकत्वं अनेकत्वं सर्वपदार्थस्थितत्वं एकपदार्थस्थितत्वं विश्वरूपं एकरूपं अनंतपर्यायत्वं एकपर्यायत्वं द्रव्य ऐसा द्रव्यभाव सर्व द्रव्यमैं महासत्ता जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य स्वरूपरूप वर्तै। अवांतर सत्ता द्रव्यसत्ता, अनादिअनंतपर्यायसत्ता, सादिसांतस्वरूपसत्ता तीन प्रकार। द्रव्यस्वरूपसत्ता गुणसत्ता पर्यायसत्ता गुणसत्ताका अनंतभेद ज्ञानसत्ता दरसनसत्ता अनंतगुणसत्ता पृथक्तभेद न छे। अनन्यत्वभेद छे। जेते कछु निज द्रव्य गुण पूर द्रव्यगुण हैं। जेतीक सब द्रव्यनकी अतीत अनागत वर्तमानपर्याय तीनकालके नवपदार्थ द्रव्य गुण पर्याय उत्पाद व्यय ध्रुव सब ज्ञेयनाम आगममैं कह्या है। ज्ञानगोचर जो कछु होय, सो सब ज्ञेयनाम जानौं " ज्ञातुं

योग्यं ज्ञेयं ” यह ज्ञेयाधिकार ज्ञेय जानि परकौं व्यंजन करैं निज ज्ञेयकौं जानि स्वरूपानुभव करणां ॥

॥ आगैं निजधर्माधिकार कहिये हैं ॥

निजधर्म वस्तुस्वभाव सो आतमा निजधर्म निर्विकार सम्यक् यथारूप अनंतगुणपर्यायस्वभाव सो धर्म कहिये । निश्चयज्ञानदर्शनादि अपना धर्म है । जीव निजधर्म धरतही परमशुद्ध है । निज कहिये आप, तिसका धर्म कहिये स्वभाव, सो निजधर्म कहिये। अपने स्वभावरूप सब पदार्थ हैं। उनका धर्म उनका निजधर्म है। आतमामैं है। तातैं दर्शन ज्ञानहीकौं निजधर्म ऐसा मति कहौ। ताकौ समाधान—, स्वभाव तौ सब सबही कनै है। उनका धर्म उनका स्वभाव यह तौ यौंही है। परितारण धर्म, सजीवधर्म, प्रकाशधर्म, उनके धर्मकौं प्रगटै। ऐसा धर्म परमधर्म, हितरूपधर्म, असाधारणधर्म, अविनाशी सुखरूपधर्म, चेतनाप्राणधर्म, परमेश्वरधर्म, सर्वोपरिधर्म,

अनंतगुणधर्म, शुद्धस्वरूपपरिणतिधर्म, महिमा अपारधारक धर्म, निजशुद्धात्मस्वभावरूपधर्म, सो निजधर्म है ॥ इनका विशेषभेद कहिये हैं ॥

यह अनादिसंसारमैं जीव कर्मयोगतैं जन्मादिदुःख भोगवे हैं। इस परधर्मकौं निजधर्म माने हैं। तातैं दुःख पावे हैं। यह तौ सांच है। काहेतैं? जो सिरदार प्रधान पुरुषकौं निंद्यमैं गिणै सो दण्ड है। निंद्यदेहमैं चेतनधर्म मानैं, सो दुःख पावैही पावै। शुद्धचैतन्यधर्मकौं जब धर्म जानै तब संसारतारणधर्म अनंतचेतनारूपधर्म तातैं सुजीवधर्म स्वज्ञेय परज्ञेय प्रकाशै, यातैं प्रकाशधर्म सब द्रव्यनिके धर्म प्रगट यानैं कीये उनके धर्मकौं प्रगटै ॥ सबतैं उत्तम यातैं परधर्म धर्म निजरूपतैं अनंतसुख होय। यातैं हितधर्म औरमैं न पाइये। यातैं असाधारणधर्म अविनाशी आनंद सहजरूप तातैं अविनाशी सुखरूपधर्म चेतनाप्राण धरै, तातैं चेतनाप्राणधर्म परमेश्वर सहजरूप ऐसे स्वभावमय परमेश्वर धर्म सबतैं उत्कृष्ट है। तातैं सर्वोपरि धर्म अनंतगुण है स्वभाव

जाकौ तातैं अनंतगुणधर्म शुद्धस्वरूप सदा परणमै शुद्ध भयें। तातैं शुद्धस्वरूपपरिणतिधर्म अपारमहिमाकौं लीये। तातैं अपारमहिमाधारक धर्म अनंतशक्तिकौं धरै ॥

अनंतशक्तिरूप धर्म अनंतपर्याय एक गुणकी, ऐसे अनंत गुण अनंतमहिमाकौं धरे, सो निजधर्मकी महिमा कहांलौं कहिये?। एकोदेश निजधर्म धरैंहूं संसारपार होय है। काहेतैं? एकोदेश भये सर्वोदेश होयही होय। तातैं जानियौं परधर्मतैं अनंतदुःख, निजधर्मतैं अनंतसुख॥ यातैं निजधर्मकौं धारि अपना परमेश्वरपद प्रगट कीजे। निजधर्मकी धारणा अनुभवतैं होय। निजधर्म भये अनुभव होय। यातैं अनुभवसार सिद्धिनिमित्त निजधर्म अधिकार कह्या ॥

॥ आगैं मिश्रधर्मअधिकार कहिये हैं ॥

सो मिश्रधर्म अंतरात्माकै है, सो काहेतैं सम्यक् स्वरूप श्रद्धान जेते कषाय अंश हैं तेते रागद्वेषधारा है। आतमश्रद्धाभावमैं आनंद होय है। कषाय सर्वथा न

गई मुख्य श्रद्धाभाव गौण परभाव एक अखण्ड चेतनाभाव सर्वथा न भया, तातैं मिश्रभाव है। अज्ञानभाव बारमैंतक एकोदेश ज्ञानचेतना है। अरु कर्मचेतनाभी है। तातैं मिश्रधारा है। स्वरूपउपयोगमैं प्रतीत भई। परि शुभकर्मकी धारा वहै है। तिनसौं रंजकभाव कर्मधारामैं है। परश्रद्धानस्वरूप मुक्तिकारण है। भवबाधा मेटनकौं समर्थ है। ऐसा कोई कर्मधाराका दुर्निवार आप है। प्रतीतिमैं स्वरूप ठावा कीया है। तौहू सर्वथा न्यारा न होय है, मिश्ररूप है। कोई प्रश्न करै—कि, सम्यक्गुण सर्वथा क्षायिकसम्यग्दृष्टिके भया है वा न भया है? ताकौं समाधान कहौ—जो कहुगे, सर्वथा भया, तौ सिद्ध कहौ। काहेतैं? एकगुण सर्वथा विमल भये सब शुद्ध होय सम्यक्गुण सब गुणमैं फैल्या है, सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन सब गुण सम्यक् भये। सर्वथा सम्यग्ज्ञान नहीं, एकोदेश सम्यग्ज्ञान है। सर्वथा ज्ञान सम्यक् होता तौ सर्वथा सम्यक् गुण शुद्ध होता, तातैं सर्वथा न कहिये। जो किंचित् सम्यक्गुण

शुद्ध कहिये, तौ सम्यक्गुणका घातक मिथ्यात्व अनंतानुबंधी कर्म था सो तो रह्या। जिस गुणका आवरण जाय सो गुण शुद्ध होय। तातैं किंचत् हूं न बणै ॥ सो कैसैं है, सो समाधान करिये है। सो अवरण तौ गया परि सब गुण सर्वथा सम्यक् न भये। आवरण गयेतैं सम्यक् सब गुण सर्वथा न भये तातैं परमसम्यक् नाहीं। सबगुण साक्षात् सर्वथा शुद्ध सम्यक् होय तब परमसम्यक् ऐसा नाम होय ॥ विवक्षाप्रमाणतैं कथन प्रमाण है। तिस दर्शनपरि पौद्गलिक स्थिति जैसैं नाश भई तबही इस जीवका जो सम्यक्त्वगुण मिथ्यात्वरूप परणम्या था, सोई सम्यक्गुण संपूर्ण स्वभावरूप होय परणम्यां प्रगट भया। चेतन अचेतनकी जुदी प्रतीतिसौं सम्यक्तगुण निज जाति स्वरूप होय परणम्या, तिसका लक्षण ज्ञानगुण अनंतशक्ति न करि विकाररूप होय रह्या था, तिन गुणकी अनंतशक्तिविषैं केतेक शक्ति प्रगट भई। सामान्यसौं नाम भयो। मति श्रुति कहिये। अथवा निश्चयज्ञान श्रुतपर्याय कहिये। जघन्यज्ञान कहिये।

अवर सर्वज्ञानशक्ति रही, ते अज्ञान विकाररूप वर्गे है। इन विकारशक्तिनकौं धर्मधारारूप कहिये। तैसैंही जीवकै दर्शनशक्ति अदर्शनरूप होयगी। तैसैंही जीवकै चारित्रकी केतेक चारित्ररूप केतेक अवरविकाररूप हैं। ऐसैं भोगगुणकी सब गुण जेतेक निरावरण सो शुद्ध। अवर विकार सो सर्व मिश्रभाव भया। प्रतीतिरूप ज्ञानमैं सर्वशुद्ध श्रद्धाभाव भया। परि आवरणज्ञानका तथा और गुणका लग्या ह। तातैं मिश्रभाव है स्वसंवेदन है। परि सर्वप्रत्यक्ष नाहीं। सर्वकर्मअंश गये शुद्ध है। अघाति रहै शुद्ध है। घातियानाशतैं परि सकलपरमातमा है। प्रत्यक्ष ज्ञान तौ भया है॥

सिद्ध निकल सकलकर्मरहित परमातमा है। अंतर आतमाक ज्ञानधारा कर्मधारा है। कोई प्रश्न करै– जो वारमैं दोय धारा कि एक ज्ञानधाराही है? जो ज्ञानधाराही है, तौ अंतर आतमा माति कहौं। जो दोय धारा है तौ वारमैं मोहक्षय भयो राग द्वेष मोह सब गये दूसरी कर्मधारा कहां रही? ताकौ समाधान–ज्ञान परोक्ष है केवलज्ञाना-

वरण है। तातैं अज्ञानभाव बारमैंतक है। तातैं अंतर आतमा है। प्रत्यक्षज्ञानविना परमातमा नाहीं। कषाय गये परि अज्ञानभाव है। तातैं परमात्मा नाहीं अंतर है, बारमैं अज्ञान कहा? ताकौ समाधान— केवलज्ञानविना सकलपर्याय न भासै सोही अज्ञान निज प्रत्यक्षविनाहू अज्ञान है। तातैं अज्ञानसंज्ञा भई। यह मिश्रअधिकार ॥

आगैं, निश्चयकरि वस्तुका स्वरूप जैसा है, ताका कछु वर्णन कीजिये है। वस्तु निज अपनां स्वरूप अनंतगुणमय तिनमैं दर्शन ज्ञान चारित्र प्रधान काहेतैं? देखन जानन परिणवनकरि, वेदनतैं रसास्वाद अनुभव होय, तहां सुख कित प्रगटै, तिनकरि चेतना जानी परि, तब चेतनसत्ता, चेतनवस्तुत्व, चेतनद्रव्यत्व, प्रमेयत्व, प्रदेशत्व ये गाये। तातैं दर्शन ज्ञान चारित्र जीववस्तुका सर्वस्व है। द्रव्य गुण पर्याय ये वस्तुकी अवस्था है। अनादिनिधन वस्तु अखण्डचेतनारूप वर्तैं है। परि अनादिकर्म-जोगतैं अशुद्ध होय रही है। सुखनिधानकौं न जानैं है, तौऊ शुद्धस्वरूप है ॥

जैसें काहूनैं कोई एक ज्ञानवान पुरुषकौं पूछा— हमकौं शुद्धचेतनकी प्राप्ति बताओ ॥ तब ता पुरुषनैं कह्या एक अमुका ज्ञानवान है तापासि जावो, तुमकौं वो बतावैगा, प्राप्ति करैगा। तब वो गयो। जाय, प्रश्न कियो—हमकूं चेतनकी प्राप्ति करौ। तब तासौं कह्यौ, जु तुम एक दरियावमैं मछ रहै है, तासमीप जावो। तुमकौं वो मछ चैतन्यप्राप्ति करैगो। तब वाके उपदेशसौं वो नर ता मछसमीप गयो, जाय प्रश्न कीयो, हमकौं शुद्धचैतन्यकी प्राप्ति करौ। तब मछ ऐसौ वचन कह्यौ, हमारौ एक काम है, सो पहलैं करो, तौ पीछैं तुमकौं चिदानंदमैं लीन करै। तुम बडे संत हो, हमारो कार्य काहूनैं अबतक न कीयो, तुम पराक्रमी दीसौ हो। तातैं यह नियम है, हमारो काज कीयां, अवश्य तुमारो काज करैंगे। ठीक जानौं तब वो पुरुष बोल्यौ, तुमारो कारिज करौंगो संदेह नाहीं करौ। तब मछनैं वासौं कह्यौ, हम बहोत दिनके तिसाये या दरियावमैं रहै हैं। हमारी तृषा न गई। पाणीको जोग न

जुस्यौ। कहूंसैं जतनकरि जल ल्यायो, तुम बडो उपकार करौ, हमारी तृषा मेटौ, महाजनकी चाल है परदुःख मेंटै। तातैं यह उपगार करौ हम तुमकौं चिदानन्द प्रत्यक्ष दिखाई प्राप्ति करैगे ॥

तब वो पुरुष बोल्यौ तुम ऐसैं काहे कहौ। जलसमूहमांहि तुम सदाही रहो हौ, ऐसैं माति कहौ, जो, जल लावो, दरियावचोर देखौ, यह जलसौं प्रत्यक्ष भर्‌यौ है। तब मछ बोल्यौ, ऐसैं तुम कहत हौ, सो यह बात तुम मांनत हौ, तौ तुम चिदानंद प्रत्यक्ष हौ, चेतना है तौ ऐसो विचार तुमनैं कीयो है। अब तुम हमकौं पूछण आये हौ, तातैं चिदानंद हंस परमेश्वर तुमही हौ। संदेह त्यागौ थिर होइ। आपणौ चैतन्यस्वरूप अनुभवौ परके अनादि जोग मैं हूं आतमा जैसाका तैसा है, परमैं अत्यन्त गुप्त भया है। तौऊ देखनेंका स्वभाव न गया। ज्ञानभाव न गया। परिणाम न भया। परमैं बरननैतैं आवस्या, मलिन भया परि निश्चयकरि अखण्ड

स्वरूप चिदानंद अनादिका है, सो ज्यौंका त्यौं बण्या है। कछु घट्या बढ्या नाहीं, भरमकल्पनातैं स्वरूप भुल्या है। परहीकौं आपा मान्या तौ कहा भया ॥

जैसैं कोई चिंतामणि करविषैं भूलि काचखण्डकौं रतन मांनि चलावै तौ वह रतन न होय, चिंतामणिकौं काच जानैं, तौ काच न होय, चिंतामणिपणा न जाय। तैसैं आतमाकौं पर जानैं तौ पर न होय। परकौं आपा जानैं तौ आपा न होय। वस्तु अपने स्वभावका त्यजन काहू काल न करै। वस्तु वस्तुत्वकौं न तजै। अपने द्रव्यकौं न तजै। अपने प्रमाणकौं न तजै। अपने प्रदेशकौं न तजै। इत्यादि भावकौं न तजै। तातैं अनादि प्रदेशप्रमाणकौं न तजै। शुद्ध अशुद्ध दोऊ अवस्थामैं अपनी द्रव्य क्षेत्र काल भावकी दशा न तजै। महिमा अनंत अमिट है। काहूपै न मेटी जाय। निश्चयकरि जो है सो है। तातैं निजवस्तुका श्रद्धान ज्ञानादि अनंतगुणमात्र जांनि अनंतसुख करै, तौ सुखी होय। उपायतैं उपेय पाइये है। सो उपेय आनंदघन पर-

मातमा परमेश्वर है। ताकौ उपाय यातैं करणौ, जु, संसारअवस्थामैंही शरीरमैं कर्मबंधतैं गुप्त भयो परभावनातैं दुःखी भयौ अपनौं परमेश्वरपद न पायो। ताकौ उपाय होय तौ उपेय पाइये, सो उपाय कहिये हैं॥

उपाय अपने स्वरूप पावनेका अपनां उपयोग है। और उपाय तप जप संयमादि शुभके हैं। जिनमैं परमात्माकी भक्ति शुभपरि प्रतीतितैं कारणभी है। कारण ध्यानतैं कार्यकी सिद्धि है। ग्रन्थ उपदेशभी कारण है। परि उपभोग आये शुद्ध है। तातैं उपयोगकी एकोदेश शुद्धकी चढनि ज्यौंज्यौं होय त्यौंत्यौं मोक्षमार्गकौं चढै॥ यह श्रीजिनेंद्रभगवानका निराबाध उपदेश है। सकल उपाधि अनादितैं लगी आई। जब उपयोग कर समाधि लागै, साक्षात् शिवपन्थ सुगम होय। अनेक संत स्वरूपसमाधि धरि धरि पार भये॥

॥ अब कछुक समाधिवर्णन कीजिये हैं॥

समाधि तौ प्रथम ध्यान भये होय है। सो ध्यान चिन्तानिरोध एकाग्र भये होय है। सो चिन्तानिरोध रागद्वेषके मिटें होय हैं। सो राग द्वेष इष्ट अनिष्ट समाज मिटे, मिटे है। तातैं जीव जे समाधिवांछक हैं, ते इष्ट अनिष्टका समागम मेटि रागद्वेप त्यागि चिंता मेटि ध्यानमैं मन धरि थिरत्व स्वरूपमें समाधि लगाई निजानन्द भेटौ स्वरूपमैं वीतरागतातैं ज्ञानभाव होय तब समाधि उपजै। वह अपने स्वरूपमैं मन लीन करै। द्रव्यगुणपर्यायमैं परिणाम लीन लय समाधि ऐसी होय है॥

इन्द्रादि संपदाके भोग रोगवत भासै। द्रव्य द्रवणतैं नाम पाईये है। गुणकौं द्रवै सो द्रवत्वलक्षण परिणाममैं तातैं गुणद्रव्यमैं परिणाम लीन होय। गुणद्रव्यमैं द्रवत्व लक्षण है। तौ परिणामसौं द्रव्य गुण मिलि गये तातैं द्रव्यत्वकी एकोदेशता साधककै ऐसी भई जो परीषह अनेककी वेदनां न वेदै है। रसास्वादमैं लीन आनंदरस तृप्ति भया। जब मन परमेश्वरमैं मिलै लीन होय न निकसै परमानंद वेदै स्वरूप धारणा॥

निरंतर जहां अचलज्योतिका विलास अनुभवप्रकाशमैं भया उपयोगमैं परिणाम लगे ज्यौंज्यौं दर्शन ज्ञान चेतना स्वरूप अनूप अखण्डित अनंतगुणमाण्डितकौं जानि रसास्वाद ले त्यौंत्यौं परविस्मरण होय पर उपाधिकी लीनता मिटै। समाधि प्रगटै। तब उत्कृष्ट सम्यक्‌प्रकार स्वरूपवेत्ता होय॥ सम्यग्ज्ञान भये वस्तुकी महिमा जानै। जानतां आनंद होय। ज्ञान ज्ञानकौं जानैं। ज्ञान दर्शनकौं जानैं। ज्ञान सब गुणकौं जानैं। द्रव्यकौं जानैं पर्यायकौं जानैं एकोदेश भेद साधक ज्ञान जानैं। ज्ञानकरि वस्तु जानतां परमपद पावै। कासा सुख (संपूर्णसुख) परोक्षज्ञानहीमैं है। प्रत्यक्षप्रतीतिमैं वेदै है। तहां आनंद ऐसा होय है॥

संप्रज्ञात समाधिमैं दुःखादिवेदना प्रत्यक्ष भये हू न वेदै। विधान स्वरूप वेदनेका है। मन विकार विलय जेते अंशकरि गया तेती समाधि भई। सम्यग्ज्ञानकरि जेता भेद वस्तुका गुणनकरि जान्या तेता सुख आनंद बढ्या। विश्राम भये स्वरूप

थिरता पाय समाधि लागी ज्ञानधारा निरावरण होय ज्यौंज्यौं निजतत्व जानै त्यौंत्यौं विशुद्धता केवलकरि ज्ञान परिणति परमपुरुषसौं मिली, निज महिमा प्रगट करै। तहां अपूर्व आनंद भावका लखाव होय तब समाधि स्वरूपकी कहिये ॥

तहां अनादि अज्ञानका भ्रमभाव आकुलतामूल था सो मिट्या, अनात्म अभ्यासके अभावतैं सहज पदका भाव भावत, भववासना विलावत, दरसावत परमपदका स्थान गुणका निधान, अनलाभ भगवान सकल पदार्थका जाननरूप ज्ञानकी प्रतीति प्रमाणभावकर नवनिधान आदि जगतका विधान झूंठा भास्या । तब प्रकाश्या आत्मभाव लखाव आपकेतैं कीना, तब चेतनभाव लीना, शुद्धधारणा धरी, निजभावना करी, शिवपदकौं अनुसरी, आनंदरससौं भरी, भवबाधा अबाधा जहां सदा मुदा सेती एती शक्ती बढाई, शिवसुखाई, चिदानंदअधिकाई, ग्रन्थग्रन्थनमैं गाई, सो समाधितैं पाईये है ॥

स्वरूपानंद पद भेदी समाधितैं होय है। वस्तुका स्वरूप गुणके जानै तैं जानैं। गुणका पुंज वस्तुमय है। वस्तु अभेद है। भेदगुण गुणीका गुणकरि भया। तातैं गुणका भेद वस्तु अभेद जनावनैंकौं कारण है॥

वितर्क कहिये-द्रव्यका शब्द ताका अर्थ भावना भावश्रुत श्रुतमैं स्वरूप अनुभवकरण कह्या। परमातम उपादेय कह्या। ताहीरूप भाव सो भावश्रुत रस पीव। अमरपद समाधितैं है। विचार अनादि भवभावनका नाश चिदानंद द्रव्य गुण पर्यायका विचार न्यारा जांनि दर्शन ज्ञान वानिगीकौं पिछानि, चेतनमैं मग्न होता ज्यौंज्यौं उपयोग स्वरूप लक्षणकौं लक्ष्य रसस्वाद पीवै, सो स्वपरभेद विचारने सार पद पाय समाधि लागी। अपार महिमा जाकी परमपद सो पाया। अनादि पर इन्द्रियजानित आनंद मानैं था, सो मेट्या। ज्ञानानंदमैं समाधि भई वस्तु वेदी आनंद भया। गुण वेदि आनंद भया। परिणति विश्राम स्वरूपमैं लीया, तब आनंद भया।

एकोदेश स्वरूपानंद ऐसा है ॥

जहां इन्द्रियविकार बल विलय भया है, मन विकार न होय, सुख अनाकुल रस रूप समाधि जागी है, "अहं ब्रह्म" "अहं अस्मि" ब्रह्म प्रतीति भावनमैं थिरतामैं समाधि भई; तहां आनंद भया। सो केतेक काललगु 'अहं' ऐसा भाव रहै, फिर समाधिमैं 'अहंपणा' तौ छुटै, 'अस्मि' कहिये है, ऐसा भाव रहे तहां दर्शन ज्ञानमय हौं, मै समाधि लागें हौं, ऐसा हू रहणा विचार है ॥

इसके मिटें विशेष ऐसा होय जो द्रव्यश्रुतवितर्कपणा मिटी। एकत्व स्वरूपमें भया एकताका रसरूप मन लीन भया समाधि लागी तहां विचारभेद मिट्या अनुभव वीतरागरूप स्वसंवेदनभाव भया। एकत्व चेतनामैं मन लागा लीन भया। तहां इन्द्रियजानित आनंदके अभावतैं स्वभाव लखावका रसास्वाद करि आनंद बढ्या तहां फिरि अस्मिभाव ज्ञानज्योतिमैं था सोभी थक्या ॥

आगैं विवेकका स्वरूपका स्वरूप परिणति शुद्धीका ऐसा—जहां परमात्माका विलास नजीक भया तहां अनंतगुणका रस फिरि परिणाम वेदि समाधि लागी। निर्विकार धर्मका विलास प्रकाश भया। प्रतीति रागादिरहितभावनमैं मनोविकार बहोत गया। तब आगैं अंश प्रज्ञात भया। तब परके जाननें विस्मरणभाव आया। तब केवलज्ञान अतिशीघ्रकालमैं पावै। परमात्मा होय लोकालोक लखावे। ऐसी अनुभवकी महिमा मनके विकार मिटैं हैं। सो मनविकार मोहके अभाव भयें मिटै है। सकलजीवकौं मोह महारिपु है। अनादि संसारी जीवकौं नचावै है। चउरासीमैं अरु संसारी हर्ष मानि मानि भवसमुद्रमैं गिरै हैं, परै हैं। आपाकौं धन्य मानै है। देखो धिठौ ही भूलितैं कैसी पकरी है। नैक निजनिधि अनंतसुखदायक कौन सभारै है। यातैं इनही जीवनकौं श्रीगुरूपदेशामृत पानक जोग्य है। इसतैं मोह मिटै अनुभव प्रगटै सो कहिये——

प्रथम श्रीजिनेन्द्रदेव आज्ञा प्रतीति करै, तहां पाछैं भगवत्प्रणीत तत्व उपादेय विचारै। चेतन प्रकाश अनंतसुखधाम, अमल अभिराम, आतमाराम पररहित उपादेय पर हेय स्वपरभेदज्ञानका निरंतर अभ्यासतैं शुद्धचैतन्यतत्वकी लब्धि होय तिहितैं राग द्वेष मोह मिटै। कर्मसंवर होय। तब कर्म मिटवातैं निजज्ञानतैं निर्जरा होय। तब सकलकर्मक्षय निजपरिणाम हुवा भावमोक्ष होय। तब द्रव्यमोक्ष होयही होय। तातैं भेदज्ञान अभ्यासतैं परमपद सिद्ध सो भेदज्ञान उपजावाको विचार कहिये है। ज्ञानभाव जाननरूप उपयोग विभावभाव अपनें जानै है। सो विभावके जाननेकी शक्ति आत्मा आपणी जानै। जानि रूप परिणमन करै। ज्ञानरस पीवै विभावनकौं न्यारे न्यारे जानैं। विभावसुधाधारा ज्ञानरूपपरणाम सुधाधारा न्यारी। धारा दोन्यौं जानै। पुद्गल अंश आठ कर्म शरीरभिन्न है जड है, । चेतन उपयोगमय है। इनमैं विवेचन करै। जुदा प्रतीतिभाव करै प्रत्यक्ष जड रहै। सदा जामैं चेतना प्रवेश न

होय। चेतना जड न होय यह प्रत्यक्ष सबं ग्रन्थ कहै सब जन कहै। जिनवाणी विशेषकरि कहै। अपनें जानहूंमैं आवै। शरीर जड अनंते त्यागे। दर्शनज्ञान सदा साथि रहवो कीया सो अबभी देखनें जाननेंवाला यह मेरा उपयोग सोही मेरा स्वरूप है। इस उपयोगी अनउपयोगी विचारत प्रतीति जड चेतनकी आवै। विभाव कर्मचेतना है। कर्म राग द्वेष मोह भावकर्म तिसमैं चेतना परणामै है। तब चिद्विकार होय। इस चिद्विकारकौं आपकरि आपा मलिन कीया है। केवलज्ञानप्रकाश आत्माका विलास है। तिसकौं न सभारै है। मोहवशतैं ग्रन्थकौं सुणे है अरु जानै है। शरीर विनसैगा परिवार धन तिया पुत्र येभी न रहैगे। परि इनसौं हित करै। नरकबंध परै। अनंतदुःखकारणकौं सुख समझै ॥

ऐसी अज्ञानता मोहवशकरि है। तातैं ज्ञानप्रकाश मेरा उपयोग सदा मेरा स्वरूप है। सो सदा स्वभाव मेरा मैं हौं। कबहूं जिसका वियोग न होय अनंतमाहिमा भण्डार

मोहसौं रहित होय । अनुपम आनंदघनकी भावना अविकार साररूप दुरनिवार स्वरूपसौं भिन्न जानि दर्शन ज्ञान चारि-करणी । अंश अंश परका जडवा परजीव सब प्रतीतिमैं ऐसैं भाव करत पर न्यारा भासै त्रादि अनंतगुणमय हमारा स्वरूप है । तिसतैं भरम मेटि विभाव न होय स्वभाव विभाव ऊफदमल आपके न रमतै भया । शुद्ध अशुद्ध दोऊ दशामैं ज्ञान शासती शक्ति प्रगटै अनादि अज्ञानतैं गुप्तज्ञान भया । भये होय सोही भाव मेटि निर्विकार सहजभाव कौं लीये चिद्विकारभाव क्रोधादिरूप करै । जो वाह्यपरिणाम उठै है सो आप आपमैं आचरण विश्राम थिरतापरणामकारि होय है । बाह्य विकारमैं न आवै । चेतना अशुद्ध है सो परिणामका करणहार अशुध्द शक्तिकौं नीकै जानै तौ निजरूप ठवा होय । नांव उपयोगरूप अपनी इस ज्ञायक परसौं स्वामित्व मेटि मेटि स्वरूप रसास्वाद प्रतीति चेतन उपयोगकी करत करत पूर्ण विस्तार पावै । तब कृतकृत्य नि-चढता चढता जाय । तब शुद्ध उपयोग स्वरस

वसै। यह श्रीजिनेन्द्रशासनमैं स्याद्वादाविद्याके बलतैं निजज्ञानकलाकौं पाय अनाकुल पद अपना करै। इहां सब कहनेंका तात्पर्य यह है । जो परकी अपना पति सर्वथा मेटि स्वरसरसास्वादरूप शुध्द उपयोग करिये । रागद्वेष विषमव्याधि है सो मेटि मेटि परमपद अमर होय। अतीन्द्रिय अखण्ड अतुल अनाकुल सुख आप पदमैं स्वसंवेदनप्रत्यक्षकरि वेदिये। सकल संत मुनिजन पंचपरमगुरुस्वरूप अनुभवकौं करै हैं। तातैं महान् जन जा पंथकौं पकरि पार भये सोही अविनाशीपुरका पंथ ज्ञानीजननकौं पकरणा अनंतकल्याणका मूल है। परिणाम चेतनाद्रव्य चेतनामैं लीन भयें अचलपद ज्ञानज्योतिका उद्योत होय है। एकोदेश उपयोग शुद्ध करि स्वरूपशक्तिकौं ज्ञानद्वारमैं जाननलक्षण करि जानै। लक्ष्यलक्षणप्रकाश आपका आपमैं भासै। तब सहजधारा वाही। निजशक्ति व्यक्त करता करता संपूर्ण व्यक्त करता करता संपूर्णव्यक्तता करै। तब यथावत् जैसा तत्त्व है तैसा प्रत्यक्ष लखावै। देखो कोई भगल विद्याकरि

कांकरेनकौं हरि हीरा मोती दिखावै है। बुहारीके तृणकौं सर्पकरि दिखावै है। तहां वस्तु लोकनकौं साची दरसै। परि साची नाहीं। तैसै परमैं निज मांनि आपकौं सुख कल्पै सो सर्वथा झूंठ है। सुखका प्रकाश परम अखण्ड चेतनाके विलासमैं है। शुद्धस्वरूप आप परकौं (खो)जना करैं तब पावै। वारवार विस्तार कहिणां इस वास्तै आवै है। अनादिका अविद्यामैं पागि रह्या है। मोहकी अत्यंत निविड गांठि पारी है। तातैं स्वपदकी भूलि भई है। भेदज्ञान अमृतरस पीवै। तब अनंतगुणधाम अभिरामकी अनंतशक्तिकौं अनंतमहिमा प्रगट करैं। यह सब कथनका मूल है। परपरिणाम दुःखधाम जानि भानि परकी मेटि स्वरस सेवन करणां अरु निदान परि दिष्टि कीजै। विनश्वर परदुःखमूलका सेवन अनादि कीया। जन्मादि दुःख भये। अब नरभवमैं संत संगतैं तत्वविचार कारण मिल्या तौ फेरि कहा अनादिभवसंतानकी बाधाके करणहार परभाव सेइये। जिसतैं अखंडित अनाकुल अविनाशी अनुपम अतुल होय सोहू भाव

करिये। जो भाव मनोहर जानि मोह करै है। अपने आतमाकौं झूंठी अविद्याके विनोदकरि ठगै है। सकल जगत चारित्र झूंठ वन्याही है, सो मोहतैं न जानै है। जो स्वरससेवन तौ पर प्रीति रीति रंच हूं न धारै। अनंतमहिमाभाण्डारकौं ज्ञानचेतनामैं आपा अनुभवै। जो जो उपयोग उठै सो मैं हौं ऐसा निश्चय भावनमैं करै, तौ तिरैही तिरै॥ अनादिका विचार करै। अनादिका पर आपा जानि दुःख सह्या। अब श्रीगुरुनें ऐसा उपदेश कह्या है। तिसकौं सत्यकरि मानतही श्रद्धातैं मुक्तिका नाथ होय है। तातैं धन्य सद्गुरु जिनौंने भवगर्भमेंसौं काढनेका उपाय दिखाया। तातैं श्रीगुरुकासा उपकारी कोई नाहीं। ऐसैं जानि श्रीगुरुके वचनप्रतीतितैं पार व्हैना॥

जेता अनुराग विषयनमैं करै है, मित्र पुत्र भार्या धन शरीरमैं करै है, तेता रुचि श्रद्धा प्रतीतिभाव स्वरूपमैं तथा पंचपरमगुरुमैं करै, तौ मुक्ति अतिसुगम होय। पंचपरमगुरुरागभी ऐसा है, जैसा संध्याका राग सूर्य अस्तताका कारण है प्रभातकी

संध्याकी ललाई सूर्यउदयकौं करै है। तातैं विविध परमगुरुविना शरीरादिराग केवलज्ञानकौं अस्तताकौं कारण है। पंच परमगुरुका राग केवलज्ञान उदयकौं कारण है। तातैं विशेषकरि परमधर्मके दाता परमधर्मका अनुभवराग परमसुखदायक है॥ अर्थ अनंत अनर्थकौं करै, सो किसही अर्थि नहीं, अर्थ सोही परमार्थ साधै। तिसकरि कामसौं किस काम निजकामनासैं काम सोही सुकाम सुधारै। धर्म मिथ्यारूप अनंतसंसार करै, सो कहा धर्म? सर्वज्ञप्रणीत निश्चय निजधर्म व्यवहार रत्नत्रयरूप कारण। मोक्ष सोही फेरि कर्म न बंधै, ऐसा विचारणा—जैसैं दीपक मंदिरमैं धरैंतैं प्रकाश होय तौ सब सूझै, तैसैं ज्ञानीकौ ज्ञानप्रकाशसौं सब सूझै॥

कैसैं ज्ञानकरि विचारै, शरीरमैं चेतन है, दिष्टिद्वारकरि देखै है। ज्ञानद्वारकरि जानै है। अपने उपयोगकरि आप चेतन हौं। आपा ऐसैं जानै देहमैं देहकौं देखनेहारा मेरा स्वरूप चेतनरूप है। तौ जडकौं चलावै है, चेतनप्रेरक है। अचेतन अनु-

पयोगी जड न देखै न जानै । यह तौ प्रसिद्ध है, जो देखै जानैं । शरीर तौ गत्यंतर जीव होय, तब शरीर क्यौं न देखै? तातैं यह देखनेंजाननेंकरि आपा चेतनरूप प्रत्यक्ष ठावा करि स्वरूपकौं चेतन मांनि अचेतनकै अभिमान तजनां मोक्षका मूल है ॥

शरीरवासनाका त्यागी स्वरूप आपा अवगाढ चेतनस्वरूप करि भावना । उजडकौं वस्ती मानै है । चेतन वस्तीकौं उजड मानै है । ऐसी भुलि मेटी, चेतनावस्ती शासती है । जहां वसै तौ अपना अनंतगुणनिधान न मुसावै । निजधनका धणी परमसाह होय । तब अनंतसुखव्यापारमैं अविनाशी नफा होय । अनादि परमैं आपा मान्या । परकौं ग्रहण करत परवस्तुका चोर भया जनमांहि दुःख दण्ड भोगवै है । विवेकराजाका अमल होय परग्रहण चोरी मिटै । तब आप साहपद धरि सुखी होय, तब निजपरिणतिरमणीकरि अपना निजघर थिर करै । अनादि अथिरपदका प्रवेश था, ताकौं त्यागि अखण्ड अविनाशी पदकौं पहुचै यह साक्षात् शिवमा-

गस्वरूपकौं। अनुभव यह शिवपद स्वरूपकौं, अनुभव त्रिभुवनसार, अनुभव कल्याण अनंत, अनुभव महिमाभण्डार, अनुभव अतुलबोधफल, अनुभव स्वरसरस, अनुभव स्वसंवेदन, अनुभव तृप्तिभाव, अनुभव अखण्डपद सर्वस्व, अनुभव रसास्वाद, अनुभव विमलरूप, अनुभव अचलज्योतिरूप प्रगटकरण, अनुभव अनुभवके रसमैं अनंत-गुणकार रस है, पंचपरमगुरु अनुभवतैं भये होंहिगे। अनुभवसौं लगेगे। सकलसंत महंत भगवंत तातैं जे गुणवंत हैं, ते अनुभवकौं करौ। सकलजीवराशि अनुभवौ स्वरूपकौं। यह अनुभवपंथ निरगंथ साधि साधि भगवंत भये ॥

परिग्रहवंत सम्यग्दृष्टिहू अनुभवकौं कबहू कवहू करै हैं, तेहू धन्य हैं। मुक्तिके साधक हैं। जा समय स्वरूप अनुभव करै है, ता समय सिद्धसमान अमलान आतमतत्त्वकौं अनुभवै है। एकोदेशस्वरूप अनुभवमैं स्वरूप अनुभवकी सर्वस्वजाति पहचानीहै। अनुभव पूज्य है, परम है, धर्म है, सार है, अपार है, करत उधार है, अविकार है, करै भवपार

है, महिमाको धारे है। दोषकौं हरणहार है। यातैं चिदानंदको सुधार है॥

सवैया.

देव जिनेन्द मुनीन्द सवै अनभौरस पीयकैं आनंद पायौ।
केवलज्ञान विराजत है निति सो अनभौरस सिद्ध लखायौ॥
एक निरंजन ज्ञायकरूप अनूप अखण्ड स्वस्वाद सुहायौ।
ते धन्य हैं जगमांहि सदैव सदा अनभौ निज आपकौं भायौ॥ १॥

अडिल.

यह अनभौ परकाश ज्ञान निज दाय है।
करि याकौ अभ्यास संत सुख पाय है॥
यामैं (अनूप अरथ) सदा भवि सरद है।
कहै दीप अविकार आपपदकौं लहै॥ १॥

इति श्रीदीपचंद साधर्मीकृत अनुभवप्रकाश नाम ग्रन्थ संपूर्ण.

अनुभवप्रकाश समाप्त.